गुरुबोध

१८५८
म. ग्रं. सं. ठाणें
विषय ९६.०५
सं. क्र. १४९८

विनोबा

REFBK-0009397

परंधाम विद्यापीठ प्रकाशन
पवनार वर्धा

गुरुबोध

विनोबा

अनुक्रम .... दि: ....
क्रमांक .... नों: दि: ....
REFBK 0009397
REFBK-0009397

परंधाम विद्यापीठ प्रकाशन
पवनार

प्रकाशक :

भाऊ पानसे

ग्राम सेवा मंडळ

परंधाम विद्यापीठ

पो. पवनार (वर्धा)

● ● ●

प्रथम संस्करण ३०००

९ मे १९५७

● ● ●

किंमत साधी बांधणी १॥ रुपया

पुठ्ठा बांधणी २। रुपये

● ● ●

मुद्रक :

मोहनलाल भट्ट

राष्ट्रभाषा प्रेस

हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

प्रस्तावना

श्रीमत् शंकराचार्यके स्तोत्रोंका और प्रकरण ग्रंथोंका यह चुनाव चार साल पहले ही किया था। भूदान-यात्रामें अुसके लिअे समय निकालना मुश्किल ही था। किन्तु बीचमें बीमारीके कारण चाँडीलमें अखंड यात्रामें दो-तीन महीने लज्जास्पद खंड पड़ा। अुस लाजकी भरपाअी करनेके लिअे मैंने अनेक कामोंके जो स्वाँग रचे अुनमें से यह अेक स्वाँग है।

प्रकाशकोंने अपनी फुरसतसे अुसे सजाया है।

आचार्यके प्रस्थानत्रयीके भाष्य तेरहसों सालोंसे विद्वत्-समाजमें गूंजते आअे हैं। लेकिन आचार्यका अवतार-कार्य, अुतनेसे सम्पन्न होनेवाला नहीं था। अुनकी पद-यात्रा भारतभर चली थी। और कअी पामर लोगोंसे अुनका साक्षात् सम्पर्क रहा था। 'मेरे पास आप लोगोंसे कहने लायक कुछ नहीं है। मेरी वाणी पंडितोंकी सेवामें समर्पित है।' अिस तरहकी भूमिका लेना अुनके लिअे असम्भव था। अिस भूमिकाके भी तत्त्वज्ञानी होते हैं। लेकिन वे दुनियाभर पैदल घूमा नहीं करते। अपनी सब ग्रंथियाँ टूट गअीं हैं अैसा भास अुन्हें हुआ करता है। ग्रंथ-रचनाकी ग्रंथि शेष दिखाअी देती है। वह प्रारब्धवशात् है, अैसा वे मान लेते हैं। आचार्य की स्थिति अिससे अेकदम भीन्न थी। वे 'वसंतवत् लोक-हितं चरंतः' अिस कोटीके परिव्राजक थे। जनता समझ सके और हजम कर सके अैसी भाषामें विचार रखनेकी

जरूरत वे महसूस करते थे। अुसीमेंसे करुणा और वात्सल्यसे प्रेरित ये लघुकाव्य प्रकट हुअे हैं। शंकराचार्य प्रस्थानत्रयीपर अपने सुप्रसिद्ध भाष्य अगर न लिखते, तो वे आचार्य नहीं बनते। लेकिन अिन लघु-काव्योंकी रचना अगर वे न करते, तो लोक-दृष्टिसे वे शंकर ही नहीं बनते।

लेकिन लोगोंके लिअे बोली गअी लोक-वाणी दूसरे भी अर्थमें लोक-वाणी बन सकती है। यानी लोगोंकी वाणी भी अुसमें दाखिल हो सकती है। शंकराचार्य अिसके लिअे अपवादरूप सिद्ध नहीं हुअे। संशोधक कहते हैं कि आदि शंकरके वचनोंमें अन्य शंकरोंके भी वचन मिल गअे हैं। पुराने लोकप्रिय लेखकोंका यही नसीब होता है। अिसलिअे प्रस्तुत संकलन को मैंने गुरुबोध यह अेक सामान्य संज्ञा दी है। आचार्यके गुरुपीठसे प्राप्त हुआ बोध समझकर हम अुसे ग्रहण करें।

लेकिन वैसा करते समय हमें यह बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिअे कि शंकराचार्य समन्वयवादी थे। भाष्यमें अुन्होंने वाद खडा किया है अैसा दिखाअी देता है। लेकिन वह भी समन्वय साधनेके हेतुसे ही है। विद्वानोंके लिअे दार्शनिक विचारोंका समन्वय करना होता है। समाजके लिअे सामाजिक कल्पनाओंका समन्वय करना होता है अिस दूसरी गरजको मद्देनजर रखकर आचार्यने खुद निर्गुणवादी होते हुअे भी सगुणके साथ ही नहीं बल्कि साकारके साथ, और वह भी विविध और विचित्र आकारोंके साथ, मेल कर लिया था, यह बात प्रसिद्ध है। समाजके लिअे पंचायतन-पूजाकी स्थापना करने तक वे नीचे अुतर आअे। अुसके अनुसार अनेक देवताओंके स्तोत्रोंकी भी अुन्होंने रचना की। और 'नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त' को अेक क्षणके लिअे अलग रखकर या ध्यानमें रखकर

भी "गोपिका वल्लभं राधिका-राधित" की आरती करनेके लिअे वे तैयार हो गअे। अिसमें विसंगति न मानी जाय। और केवल अिसी आधारपर वे स्तोत्र आदि शंकराचार्यके नहीं है अैसा कहनेका आग्रह न रखें। समन्वयकी भूमिकाको मानते हुअे भी जो वचन गले उतारना सभव न हो वे लेनेकी कोअी आवश्यकता नहीं है। यह दृष्टि रखकर मैंने यह संकलन किया है। कुल साहित्यका करीब अेक चौथाअी हिस्सा ही चुना है अिसलिअे छोड़ने लायक छोंड देनेमें जरा भी कठिनाअी नहीं हुअी।

* * *

गुरु-बोधका स्वरूप समूचे जीवनको व्याप्त करनेवाला है। शंकराचार्य मुक्तिवादी होनेपर भी अुनकी सिखावनमें सामान्य नीतिबोधसे लेकर 'मौनमाश्रये' तकके सब साधनोंका समावेश हो जाता है। संकलन करते समय अुस दृष्टिसे प्रकरणोंकी रचना की है।

पहले प्रकरणमें नीति-विचार, चित्तशुद्धि और तदुपयोगी जीवनचर्या, यह सामान्य अुपयोगका विषय लिया है।

दूसरे प्रकरणमें साधन-चतुष्टयका प्रतिपादन किया है। साधन-चतुष्टय आत्मसात् नहीं होता है तब तक ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकार प्राप्त नहीं होता, यह अडंगा शंकराचार्यने लगा दिया है अतसर पाश्चात्य फिलासफर अिस तरहका अडंगा नहीं लग हैं। अिसीलिअे अुनके ग्रंथ 'वाग्-वैखरी शब्द-झरी' के जैसे हैं। विशिष्ट गुण-विकास होनेपर ही ज्ञान-साधना हजम हो ना यह अनुभवकी बात है। की

तीसरे तथा चौथे प्रकरणमें भक्ति-स्तोत्रों और वेदान्‍ ग्रमकी संग्रह है। वे खुले दिलसे गुनगुनाते रहें। अिस तरह नसलिअे वे जीवनमें ओत प्रोत हो जाअेंगे यह अुनमें सामर्थ्य ो साधना

पाँचवाँ प्रकरण वाक्य-विचारोंका। वेदान्तमें 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत् त्वमसि' अित्यादि महावाक्योंके चिंतनको साधनाका अेक विशेष प्रकार माना है। भक्तिमार्गमें नाम-स्मरणकी जो महिमा है वही वेदान्तमें वाक्य-विचारकी है। नामस्मरणमें मुख्य अपेक्षा प्रेमकी रहती है; महावाक्य-चितनमें विचार प्रधान रहता है।

प्रकरण ६ से ८ में छोटे-बडे प्रकरण-ग्रंथोंमेंसे बहुत सारा अनवश्यक विस्तार कठोरतापूर्वक काटकर परिमित साररूप अंश लिया है। चिंतनके लिअे अुसमें बहुत खाद्य मिल सकता है। अुसके बारेमें अिस छोटीसी प्रस्तावनामें अधिक विवरणकी अपेक्षा नहीं कर सकते। सिर्फ अेक ही बात कहनेकी अिच्छा होती है–'ब्रह्म सत्यं, जगत् मिथ्या, जीवो ब्रह्मेव नापरः' अिस प्रसिद्ध वेदान्त-डिंडिमका, (ढींढोरेका) मैंने अपने लिअे कुछ रूपान्तर कर लिया है। मेरा श्लोक अिस प्रकार है––

"वेद-वेदान्त-गीतानां विनुना सार उद्धृतः।
ब्रह्म सत्यं, जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्य-शोधनम्

अिससे वेदान्तकी ध्वनि बदलती है अैसा मुझे नहीं लगता। बल्कि अुससे वेदान्तका विज्ञानयुगके साथ अच्छा मेल बैठता है।

नवाँ प्रकरण अपरोक्षानुभूति। मुझे यह शंकराचार्यका शि[रोमणि] ग्रंथ लगता है। बिलकुल थोड़ेमें, लेकिन अंगोपांग सहि[त]। मूल १४४ श्लोक हैं; अुनमेंसे चुनिदा १०० श्लोक निकाल[कर] लिअे हैं। ब्रह्म-विद्या और योग-विद्या मिलाकर कुल परमार्थ-विचारमें कहीं भी कसर नहीं रखी है। पतंजलिका योग-विधि ... (यानी ३+५=८ अंगोंका) है। आचार्यने अुसमें वृद्धि करके नया य[ो]ग-विधि सुझाया है। वह भी त्रिपंचाँग (यानी ३×५=१५

अंगोंका) है। पूर्व-विचारोंका समन्वय करके साथ-साथ आचार्य अुसमें किस तरह वृद्धि करते हैं अिसका यह अेक अुदाहरण है।

दसवाँ प्रकरण विवेक-चूड़ामणि। अिसमें शंकराचार्यकी काव्य-कला प्रकट हुअी है। विविध छंदोंसे सजे हुअे प्रसन्न मधुर काव्यका आस्वाद अिसमें ले सकते हैं। अिसकी रचना गीताके दूसरे अध्याय के अनुसार की है। अिसमें ज्ञानी पुरुषके लिअे स्थितप्रज्ञ और जीवन्-मुक्त यह दो संज्ञाअें दी हैं। अिनमेंसे स्थित-प्रज्ञ गीताका पारिभाषिक शब्द है। जीवन्-मुक्त शब्द गीतामें यद्यपि नहीं आया है फिर भी गीताके पाँचवें अध्यायमें अुसीके चरित्रका निरूपण है। 'अिहैव तैर्जितः सर्गः' 'शक्नोतीहैव यः सोढुं' 'अभितो ब्रह्म-निर्वाणं वर्तते' और अन्तमें 'विगतेच्छाभयक्रोधो यः **सदामुक्त** अेव सः' ये वचन 'जीवन्-मुक्त' अिस सामासिक शब्दका विग्रह पेश करनेवाले यह वचन हैं।

यह अिस संकलनका संक्षेपमें स्वरूप है।

* * *

अब शंकराचार्यका तात्त्वज्ञान संक्षेपमें देखेंगे। शांकर-विचार-अद्वैत, यह तो सब जानते ही हैं। अद्वैत याने प्रेमकी परिसीमा। यह सारी दुनिया मेरा ही रूप है यह है अद्वैतकी भूमिका। अिस भूमिकामें प्रेम अधिक रहेगा, या अपनेसे जगत्की भिन्नताका भास करानेवाली भूमिकामें प्रेम अधिक रहेगा? छिछले पानीकी छलछलाहट गहरे पानीमें नहीं होती है। अुसी तरह अद्वैतमें प्रेमकी छलछलाहट नहीं दिखाअी देगी, लेकिन गहराअी होगी। अिसलिअे अद्वैतानुभूतिकी साधना प्रेमके और भूतदयाके विस्तारकी ही साधना

होगी। अिसीलिअे शंकराचार्य भगवान् विष्णुकी प्रार्थना करते हैं---
'भूतदयाँ विस्तारय'।

अद्वैतमें जगत् अपनेसे भिन्न नहीं मानते अितना ही नहीं बल्कि अीश्वरको भी भिन्न नहीं मानते यहाँ तक बात है। अितना बोझ अुठानेमें मन हिचकिचाता है। भक्ति मानो कुंठित होने लगती है। अिसमेंसे कुछ न कुछ मार्ग निकलना चाहिअे। आचार्यने वह काफी खुला कर दिया है। वह कहते हैं, प्रभो तुझमें और मुझमें भेद नहीं है यह वास्तविक सत्य है। फिर भी 'नाथ तवाहं, न मामकीनस्त्वम्।' समुद्रका तरंग कहलाता है, तरंगोंका समुद्र हो नहीं सकता। भक्तिके लिअे अिससे अधिक आजादीकी आवश्यकता नहीं है।

अीश्वर, जगत् और मैं, अिनमें अगर अद्वैत है, तो यह त्रिक कहाँसे आया? अिसपर आचार्यका अुत्तर है, मायाके कारण। और माया मिथ्या है यह तो शांकर-सिद्धांतका निचोड है। मिथ्या याने न सही, न झूट, केवल भासरूप। निराकारमें आकार दिखाअी देता है यह भास। अिसका अुदाहरण अपक्व चित्तके लिअे रज्जुसर्प, और परिपक्व चित्तके लिअे सुवर्ण-कंकण (प्र. ५०. श्लो -५-६) मायाकी अिस अुपपत्तिसे जिस बुद्धिका समाधान नहीं होगा अुसका दूसरे किसी अुपपत्तिसे वह होगा यह मैं नहीं मानता।

थोड़ेमें तत्त्वज्ञान समाप्त हुआ। अिसके पेटमें कर्मयोग, चित्तशुद्धिकी साधना, भक्ति, ध्यान, वैराग्य, गुण-विकास, श्रवण-नन अित्यादि सब आ जाते हैं। 'आते हैं और जाते हैं' यह है अिसकी बि. । सब साधनाओंके लिअे यहाँ अवकाश है। किसीको भी खूबी नहीं है। लेकिन आना है वह वापिस जानेकी तैयारीसे मनोही। हमेशाके लिअे घर बनाकर रहनेकी गुंजाअिश नहीं। आना है

अुपदेश-पंचकम् (प्र. ४२) के प्रकरणमें समूचा साधनमार्ग सिलसिलेवार पेश किया है। साधनाकी कल्पनाके बारेमें शांकर-विचारमें कहीं भी संकुचितता नहीं दिखाअी देती। किसी भी साधनाका शंकराचार्य बोझ नहीं होने देते। वैसे कअी साधक किसी न किसी साधनामें गिरफ्तार हुअे दिखाअी देते हैं। लेकिन साधना छूटनेके लिअे है, कैद होनेके लिअे नहीं, यह बात अगर ध्यानमें न रही, तो पुण्य ही भाररूप बननेकी नौबत आती है। शांकर-विचारका आत्यंतिक आकर्षण मुझे यही है।

शंकराचार्यका बहुत बड़ा विचार-ऋण मेरे सिरपर है। देह-भावनामेंसे मुक्त होना यही अुऋण होनेका अुपाय है। वह प्रक्रिया मेरी निरंतर जारी है। और मुझे भरोसा है कि अीश्वर-कृपासे वह पूर्ण होगी। तब तक सबको प्रसाद बाँट देना भी अुऋण होनेका अेक स्थूल अुपाय हो सकता है। अुसीके लिअे यह प्रयास है।

अब हमारी तमिलनाड़की भूदान-यात्रा समाप्त हो रही है; और केरल प्रांतमें प्रवेश हो रहा है। केरलके कालडी ग्राममें, जो कि शंकराचार्यका जन्म-स्थान है, अिस सालका सर्वोदय-संमेलन होना तय हुआ है। यह अेक अीश्वरी कृपाका योग है। क्योंकि संमेलन बने वहाँतक कर्नाटकमें हो अैसी हम सबकी अिच्छा थी और प्रयत्न भी था। लेकिन अचानक ग्रामदानकी चेतना तमिलनाड़में संचारित होनेकी वजहसे तमिलनाड़की यात्रा अधिक समयतक चली और संमेलन केरलमें रखना पड़ा। तीन साल पहले भगवान बुद्धकी बोधगयामें संमेलन होनेका योग आया था। और आज आचार्यके जन्मस्थानमें वह होने जा रहा है। वेदान्त और अहिंसाके समन्वयकी

घोषणा हमने बोधगयामें की थी। अुसपर मानो अीश्वरी मान्यताकी मुहर लग रही है।

बत्तीस साल पहले वायकम सत्याग्रहके निरीक्षणके लिअे गांधीजीकी आज्ञासे केरल प्रांतमें मेरा आना हुआ था। अुस समय कालडी ग्राम पास होते हुअे भी प्राप्त कार्यमेंसे समय निकाल कर वहाँ जाना अुचित नहीं लगा। अुस समय हृदयमें जो अुत्कट भावना भरी थी अुसका चित्रण गीता प्रवचनके बारहवे अध्यायमें किया है। अितने वर्षोंके बाद अब कालडी जाना होगा; वहाँ सर्वोदय संमेलन होगा; और वहीं प्रकाशकोंकी योजनाके अनुसार गुरुबोधका प्रकाशन, अर्थात् आचार्यके चरणोंमें समर्पण, होगा। यह सारी अीश्वरी लीला देखकर मन अुसके चरणोंमें लीन होता है और पिगल जाता है।

तिनेवेल्ली
९–४–५७

विनोबा

——:०:——

अनुक्रमणिका

I जीवन-शोधनम्

१ ततः किम् १
२ नीति-वचनम् ४
३ भज गोविंदम् ६
४ प्रबोध-सुधा १०
५ चित्त-वेगः १२
६ चित्त-प्रसादः १३
७ जीवन-चर्या १४

II साधना

८ साधनोद्देशः १९
९ नित्यानित्यवस्तु-विवेकः १९
१० वैराग्यम् २०
११ शमादि-षट्कम् २२
१२ मुमुक्षुत्वम् ३०

III भक्ति-मार्गः

१३ षट्पदी ३५
१४ अच्युताष्टकम् ३६
१५ कृष्णाष्टकम् ३८
१६ गोविंद-पंचकम् ४०
१७ भजे पांडुरंगम् ४१
१८ भक्ति-तत्त्वम् ४२
१९ सगुण-निर्गुणम् ४४
२० त्रिंशदक्षर-मंत्रः ४५
२१ महः शैवमीडे ४६
२२ अपराध-क्षमापनम् ४७
२३ क्वचिदपि कुमाता न भवति ४८
२४ आनंद-लहरी ४९
२५ माता अन्नपूर्णा ५१
२६ गंगा-स्तवः ५२
२७ नर्मदाष्टकम् ५३

IV वेदान्त-पाठः

२८ प्रातः स्मरणम् ५७
२९ हरिमीडे ५७
३० दक्षिणामूर्तिः ६०
३१ मनीषा-पंचकम् ६२
३२ ते धन्याः ६३
३३ कौपीन-भाग्यम् ६५
३४ शिवोऽहं शिवोऽहम् ६५
३५ शिवः केवलोऽहम् ६७
३६ प्रत्यगेवाहमस्मि ६८
३७ तदेवाहमस्मि ७०
३८ स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा (हस्तामलकः) ७२
३९ शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ७४
४० ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि ७५

घोषणा हमने बोधगयामें की थी। अुसपर मानो अीश्वरी मान्यताकी मुहर लग रही है।

बत्तीस साल पहले वायकम सत्याग्रहके निरीक्षणके लिअे गांधीजीकी आज्ञासे केरल प्रांतमें मेरा आना हुआ था। अुस समय कालडी ग्राम पास होते हुअे भी प्राप्त कार्यमेंसे समय निकाल कर वहाँ जाना अुचित नहीं लगा। अुस समय हृदयमें जो अुत्कट भावना भरी थी अुसका चित्रण गीता प्रवचनके बारहवें अध्यायमें किया है। अितने वर्षोंके बाद अब कालडी जाना होगा; वहाँ सर्वोदय संमेलन होगा; और वहीं प्रकाशकोंकी योजनाके अनुसार गुरुबोधका प्रकाशन, अर्थात् आचार्यके चरणोंमें समर्पण, होगा। यह सारी अीश्वरी लीला देखकर मन अुसके चरणोंमें लीन होता है और पिगल जाता है।

तिनेवेल्ली
९–४–५७

विनोबा

---:०:---

अनुक्रमणिका

I जीवन-शोधनम्

१ ततः किम् १
२ नीति-वचनम् ४
३ भज गोविंदम् ६
४ प्रबोध-सुधा १०
५ चित्त-वेगः १२
६ चित्त-प्रसादः १३
७ जीवन-चर्या १४

II साधना

८ साधनोद्देशः १९
९ नित्यानित्यवस्तु-विवेकः १९
१० वैराग्यम् २०
११ शमादि-षट्कम् २२
१२ मुमुक्षुत्वम् ३०

III भक्ति-मार्गः

१३ षट्पदी ३५
१४ अच्युताष्टकम् ३६
१५ कृष्णाष्टकम् ३८
१६ गोविंद-पंचकम् ४०
१७ भजे पांडुरंगम् ४१
१८ भक्ति-तत्त्वम् ४२
१९ सगुण-निर्गुणम् ४४
२० त्रिंशदक्षर-मंत्रः ४५
२१ महः शैवमीडे ४६
२२ अपराध-क्षमापनम् ४७
२३ क्वचिदपि कुमाता न भवति ४८
२४ आनंद-लहरी ४९
२५ माता अन्नपूर्णा ५१
२६ गंगा-स्तवः ५२
२७ नर्मदाष्टकम् ५३

IV वेदान्त-पाठः

२८ प्रातः स्मरणम् ५७
२९ हरिमीडे ५७
३० दक्षिणामूर्तिः ६०
३१ मनीषा-पंचकम् ६२
३२ ते धन्याः ६३
३३ कौपीन-भाग्यम् ६५
३४ शिवोऽहं शिवोऽहम् ६५
३५ शिवः केवलोऽहम् ६७
३६ प्रत्यगेवाहमस्मि ६८
३७ तदेवाहमस्मि ७०
३८ स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा (हस्तामलकः) ७२
३९ शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम् ७४
४० ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि ७५

४१ उपदेश-पंचकम् ७६

४२ परा पूजा ७७

V वाक्य-विचारः

४३ लघु-वाक्य-वृत्तिः ८१

४४ वाक्य-सुधा ८३

४५ वाक्य-वृत्तिः ८९

VI बोध-सोपानः

४६ आत्म-बोधः ९७

४७ बंध-मोक्ष—कथा १००

४८ अद्वैत-मर्यादा १०१

४९ वेदांत-डिंडिमः १०२

५० श्रुति-तात्पर्यम् १०२

५१ अद्वैतोपमानम् १०४

५२ ब्रह्मानुचिंतनम् १०६

५३ उन्मनीं १०७

५४ मह्यं नमः ११०

५५ मौनं आश्रये ११२

VII ज्ञान-चर्चा

५६ नव-मतवादाः ११५

५७ शून्यशंका-निरसनम् ११८

५८ सुख-प्रयत्नो व्यर्थः १२२

५९ श्रवणसहकारि-साधनापेक्षा १२५

६० गीता-रहस्यम् १२७

VIII उपनिषत्-पद्धतिः

६१ ब्रह्मविद्यारंभः १३३

६२ वेदान्त-श्रवणं कुर्यात् १३४

६३ ज्ञान-निष्ठा कर्तव्या १३५

६४ अ-नियोज्योऽहम् १३६

६५ सेतुः सर्व-व्यवस्थानाम् १३७

६६ मनो हि अविद्या १३८

६७ मनसः शोधनम् १४०

६८ मनः संबोधनम् १४२

६९ मनसः साक्षी १४४

७० मानसं तीर्थम् १४६

७१ जीवन्मुक्तानंदलहरी १४६

७२ द्वादशी १४८

IX अपरोक्षानुभूतिः

७३ साधन-चतुष्टयम् १५३

७४ विचारः १५४

७५ आत्मानात्मनोः पार्थक्यम् १५५

७६ आत्मानात्म-विभागो मिथ्या १५६

७७ दृष्टांत-संग्रहः १५८

७८ प्रारब्ध-निरसः १५९

७९ त्रिपंचांगानि १६२

८० समाधेर् विघ्नाः १६३

८१ ब्रह्म-वृत्तिः १६४

८२ अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां ब्रह्म-भावना १६५

X विवेक-चूडामणिः

८३ मोक्षकारण-सामग्री १६९
८४ शिष्य-देशिक-संवादः १७२
८५ मोहं जहि १७६
८६ शरीर-त्रयं अव्यक्तं च १७८
८७ पंचकोश-विलक्षणः १८०
८८ पंचकोश-विलक्षणत्वम् १८२
८९ सांख्य-निष्ठा १०५
९० निर्वासनो भव १८९
९१ अहंकारो हेयः १९२
९२ न प्रमदितव्यम् १९४
९३ समाधत्स्व १९८
९४ वैराग्य-बोधौ मुक्तिहेतू २००
९५ वैराग्य-बोध परिणामः २०३
९६ स्थित-प्रज्ञता २०५
९७ न पारमार्थिकं प्रारब्धादि २०७
९८ शिष्यस्य कृतार्थता-प्रकाशनम्
९९ आत्मारामः सन् कालं नय २१३
१०० ब्रह्म-विहारः २१६

गुरुबोध...

जीवन-शोधनम्

·ग्रंथ संग्रह · स्थानकवासी
अनुक्रम .... वि: ....
क्रमांक .... नौ: वि: ....

प्रकरणानि

१	ततः किम्	श्लोक-संख्या ६
२	नीति–वचनम्	१६
३	भज गोविंदम्	३०
४	प्रबोध–सुधा	१५
५	चित्त–वेगः	८
६	चित्त–प्रसादः	१०
७	जीवन–चर्या	१५
		१००

क्रा. क्र. ८२१८

: १ : ततः किम्

१ लब्धा विद्या राज-मान्या ततः किं
प्राप्ता संपत् प्राभवाढ्या ततः किम्
तृप्तो मृष्टान्नादिना वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतो ऽभूत्

२ दृष्टा नाना चारु-देशास् ततः किं
पुष्टाश्चेष्टा बंधु-वर्गास् ततः किम्
नष्टं दारिद्र्यादि-दुःखं ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतो ऽभूत्

३ स्नातं तीर्थे जह्नुजादौ ततः किं
दानं दत्तं द्व्यष्ट-संख्यं ततः किम्
जप्ता मंत्राः कोटिशो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतो ऽभूत्

४ अन्नैर् विप्रास् तर्पिता वा ततः किं
यज्ञैर् देवास् तोषिता वा ततः किम्
कीर्त्या व्याप्ताः सर्व-लोकास् ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतो ऽभूत्

५ युद्धे शत्रुर् निर्जितो वा ततः किं
भूयो मित्रैः पूरितो वा ततः किम्
योगैः प्राप्ताः सिद्धयो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतो ऽभूत्

६ यस्येदं हृदये सम्यग् अनात्मश्री-विगर्हणम्
सदोदेति, स एवात्म-साक्षात्कारस्य भाजनम्

[अनात्मश्री–विगर्हणम्]

: २ : नीति-वचनम्

१ भगवन् किमुपादेयं गुरु-वचनं, हेय मपि च कि मकार्यम्
को गुरु रधिगत-तत्त्वः शिष्यहितायोद्यतः सततम्

२ त्वरितं किं कर्तव्यं विदुषां, संसारसंतति-च्छेदः
किं मोक्ष-तरोर् बीजं सम्यग् ज्ञानं क्रिया-सिद्धम्

३ कः पथ्यतरो धर्मः, कः शुचि रिह यस्य मानसं शुद्धम्
कः पंडितो विवेकी, किं विष मवधीरणा गुरुषु

४ किं संसारे सारं बहुशो ऽपि विचिंत्यमान मिद मेव
किं मनुजे ष्विष्टतमं स्व-पर-हितायो द्यतं जन्म

५ मदिरेव मोह-जनकः कः स्नेहः, के च दस्यवो विषयाः
किं गुरुताया मूलं यदेत-दप्रार्थनं नाम

६ कथय पुनः के शशिनः किरण-समाः सज्जना एव
को नरकः पर-वशता, किं सौख्यं सर्वसंग-विरतिर् या

७ किं सत्यं भूत-हितं, प्रियं च किं प्राणिनां असवः
को ऽनर्थफलो मानः, का सुखदा साधुजन-मैत्री

८ आ-मरणात् किं शल्यं प्रच्छन्नं यत् कृतं पापम्
कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने

९ कस्मै नमांसि देवाः कुर्वन्ति दया-प्रधानाय
को ऽन्धो यो ऽकार्य-रतः, को बधिरो यो हितानि न शृणोति

१० को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति
किं दान-मनाकांक्षं, किं मित्रं यो निवारयति पापात्

११ चिंतामणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि तत् चतुर् भद्रम्
किं तद् वदन्ति भूयो विधूत-तमसो विशेषेण

१२ दानं प्रियवाक्-सहितं, ज्ञान-मगर्वं, क्षमान्वितं शौर्यम्
वित्तं त्याग-समेतं, दुर्लभ-मेतत् चतुर् भद्रम्

१३ किं लघुताया मूलं प्राकृत-पुरुषेषु या याच्ञा
रामादपि कः शूरः स्मरशर-निहतो न यश् चलति

१४ किमभयमिह वैराग्यं, भयमपि किं वित्तमेव सर्वेषाम्
को हि भगवत्-प्रियः स्याद् यो ऽन्यं नोद्वेजयेद् अनुद्विग्नः

१५ को वर्धते विनीतः, को वा हीयेत यो दृप्तः
किं भाग्यं देहवतां आरोग्यं, कः फली कृषिकृत्

१६ किं दुष्करं नराणां यत् मनसो निग्रहः सततम्
केषां अमोघ-वचनं ये च पुनः सत्य-मौन-शम-शीलाः

[प्रश्नोत्तर-रत्न-मालिका]

: ३ : भज गोविंदम्

१ भज गोविंदं भज गोविंदं, भज गोविंदं मूढ-मते
प्राप्ते संनिहिते मरणे, न हि न हि रक्षति 'डुकृञ् करणे'

२ मूढ जहीहि धनागम-तृष्णां, कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्
यत् लभसे निज-कर्मोपात्तं वित्तं, तेन विनोदय चित्तम्

३ अर्थमनर्थं भावय नित्यं, नास्ति ततः सुख-लेशः सत्यम्
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः, सर्वत्रैषा विहिता रीतिः

४ का ते कांता, कस् ते पुत्रः, संसारो ऽयमतीव विचित्रः
कस्य त्वं, कः, कुत आयातः, तत्त्वं चिंतय यदिदं भ्रातः

५ मा कुरु धन-जन-यौवन-गर्वं, हरति निमेषात् कालः सर्वम्
मायामय मिद मखिलं हित्वा, ब्रह्म-पदं त्वं प्रविश विदित्वा

६ दिन-यामिन्यौ सायं प्रातः, शिशिर-वसंतौ पुन रायातः
कालः क्रीडति गच्छति आयुः, तदपि न मुंचति आशा-वायुः

७ पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः, पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः
पुनरपि अयनं पुनरपि वर्षं, तदपि न मुंचति आशामर्षम्

८ पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी-जठरे शयनम्
इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपया पारे पाहि मुरारे

९ जटिलो मुंडी लुंचित-केशः, काषायांबर-बहु-कृतवेषः
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढः, उदर-निमित्तं बहु-कृतवेषः

१० अंगं गलितं पलितं मुंडं, दशन-विहीनं जातं तुंडम्
वृद्धो याति गृहीत्वा दंडं, तदपि न मुंचति आशा पिंडम्

११ अग्रे वह्निः पृष्ठे भानुः, रात्रौ चुबुक-समर्पित-जानुः
करतल-भिक्षा तरुतल-वासः, तदपि न मुंचति आशा-पाशः

१२ यावद् वित्तोपार्जन-सक्तः, तावत् निज-परिवारो रक्तः
पश्चात् जीवति जर्जर-देहे, वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे

१३ यावत् पवनो निवसति देहे, तावत् पृच्छति कुशलं गेहे
गतवति वायौ देहापाये, भार्या बिभ्यति तस्मिन् काये

१४ बालस् तावत् क्रीडा-सक्तः, तरुणस् तावत् तरुणी-रक्तः
वृद्धस् तावत् चिंता-मग्नः, परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः

१५ वयसि गते कः काम-विकारः, शुष्के नीरे कः कासारः
क्षीणे वित्ते कः परिवारः, ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः

१६ का ते ऽष्टादश-देशे चिंता, वातुल किं तव नास्ति नियंता
क्षण-मिह सज्जन-संगति-रेका, भवति भवार्णव-तरणे नौका

१७ गेयं गीता-नामसहस्रं, ध्येयं श्रीपति-रूप-मजस्रम्
नेयं सज्जन-संगे चित्तं, देयं दीन-जनाय च वित्तम्

१८ भगवद्गीता किंचि-दधीता, गंगाजल-लवकणिका पीता
सकृदपि येन मुरारि-समर्चा, क्रियते तस्य यमेन न चर्चा

१९ को ऽहं कस् त्वं कुत आयातः, का मे जननी को मे तातः
इति परिभावय सर्व-मसारं, विश्वं त्यक्त्वा स्वप्न-विचारम्

२० कामं क्रोधं लोभं मोहं, त्यक्त्वा-त्मानं भावय को ऽहम्
आत्मज्ञान-विहीना मूढाः, ते पच्यन्ते नरक-निगूढाः

२१ सुरमंदिर-तरुमूल-निवासः, शय्या भू-तल-मजिनं वासः
सर्वपरिग्रहभोग-त्यागः, कस्य सुखं न करोति विरागः

२२ शत्रौ मित्रे पुत्रे बंधौ, मा कुरु यत्नं विग्रह-संधौ
भव सम-चित्तः सर्वत्र त्वं, वांछसि अचिरात् यदि विष्णुत्वम्

२३ त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुः, व्यर्थं कुप्यसि मयि असहिष्णुः
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्

२४ नलिनीदलगत-जलमतितरलं, तद्वत् जीवितमतिशय-चपलम्
विद्धि व्याध्यभिमान-ग्रस्तं, लोकं शोक-हतं च समस्तम्

२५ प्राणायामं प्रत्याहारं, नित्यानित्य-विवेक-विचारम्
जाप्यसमेत-समाधि-विधानं, कुरु अवधानं महदवधानम्

२६ कुरुते गंगासागर-गमनं, व्रत-परिपालनमथवा दानम्
ज्ञान-विहीने सर्व-मतेन, मुक्तिर् न भवति जन्म-शतेन

२७ गुरुचरणांबुज-निर्भरभक्तः, संसारात् अचिरात् भव मुक्तः
सेंद्रियमानस-नियमात् एवं, द्रक्ष्यसि निज-हृदयस्थं देवम्

२८ रथ्या-कर्पट-विरचित-कंथः, पुण्यापुण्य-विवर्जित-पंथः
योगी योग-नियोजित-चित्तो, रमते बालोन्मत्तवदेव

२९ योग-रतो वा भोग-रतो वा, संग-रतो वा संग-विहीनः
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं, नंदति नंदति नंदत्येव

३० सत्-संगत्वे निःसंगत्वं, निःसंगत्वे निर्मोहत्वम्
निर्मोहत्वे निश्चलितत्वं, निश्चलितत्वे जीवन्मुक्तिः

[मोह-मुद्गरः]

: ४ : प्रबोध-सुधा

१ वैराग्य-मात्म-बोधो भक्तिश् चेति त्रयं गदितम्
मुक्तेः साधन-मादौ तत्र विरागो वितृष्णता प्रोक्ता

२ सा च अहं-ममताभ्यां प्रच्छन्ना सर्व-देहेषु

३ देहः किमात्मकोऽयं, कः संबन्धोऽस्य वा विषयैः
एवं विचार्यमाणे ऽहंता-ममते निवर्तेते

४ आयुः क्षण-लवमात्रं न लभ्यते हेम-कोटिभिः क्वापि
तत् चेत् गच्छति सर्वं मृषा ततः का-धिका हानिः

५ नरदेहातिक्रमणात् प्राप्तौ पश्वादि-देहानाम्
स्व-तनोरपि अज्ञाने परमार्थस्यात्र का वार्ता

६ क्वात्मा सच्चिद्रूपः क्व मांस-रुधिरास्थि-निर्मितो देहः
इति यो लज्जति धीमान् इतर-शरीरं स किं मनुते

७ संसृति-पारावारे अगाध-विषयोदकेन संपूर्णे
नृ-शरीर-मंबु-तरणं कर्म-समीरैर् इतस्ततश् चलति

८ छिद्रैर् नवभि-रुपेतं जीवो नौका-पतिर् महान् अलसः
छिद्राणां अनिरोधात् जल-परिपूर्णं पत-त्यधः सततम्

९ विषयेंद्रिययोर् योगे निमेष-समयेन यत् सुखं भवति
विषये नष्टे दुःखं यावज्जीवं च तत् तयोर् मध्ये

१० हेय-मुपादेयं वा प्रविचार्य सुनिश्चितं तस्मात्
अल्प-सुखस्य त्यागात् अनल्प-दुःखं जहाति सुधीः

११ ममताभिमान-शून्यो विषयेषु पराङ्मुखः पुरुषः
तिष्ठन्नपि निज-सदने न बाध्यते कर्मभिः क्वापि

१२ वैराग्य-भाग्य-भाजः प्रसन्न-मनसो निराशस्य
अप्रार्थित-फल-भोक्तुः पुंसो जन्मनि कृतार्थतेह स्यात्

१३ उत्पन्नेऽपि विरागे विना प्रबोधं सुखं न स्यात्
स भवेद् गुरूपदेशात् तस्माद् गुरु-माश्रयेत् प्रथमम्

१४ त्रेधा प्रतीति-रुक्ता शास्त्राद् गुरुतस् तथा-त्मनस् तत्र
शास्त्र-प्रतीति-रादौ यद्वत् मधुरो गुडोऽस्तीति

१५ अग्रे गुरु-प्रतीतिर् दूराद् गुड-दर्शनं यद्वत्
आत्म-प्रतीति-रस्माद् गुड-भक्षण-जं सुखं यद्वत्

[प्रबोध-सुधाकरः]

मराठी ग्रंथ संग्रहालय, ठाणे. स्थळप्रत.
अनुक्रम २८०११ वि: काव्य
१७६८ नों. दि. २२-२-५९

: ५ : चित्त-वेगः

१ हृष्टं कदापि रुष्टं शिष्टं दुष्टं च निंदति स्तौति
चित्तं पिशाचमभवद् राक्षस्या तृष्णया व्याप्तम्

२ दंभाभिमान-लोभैः काम-क्रोधोरुमत्सरैश् चेतः
आकृष्यते समंतात् श्वभिरिव पतितास्थिवत् मार्गे

३ तस्मात् शुद्ध-विरागो मनोऽभिलषितं त्यजेत् अर्थम्
तदनभिलषितं कुर्यात् निर्व्यापारं ततो भवति

४ वर्षा स्वंभः-प्रचयात् कूपे गुरु-निर्झरे पयः क्षारम्
ग्रीष्मेणैव तु शुष्के माधुर्यं भजति तत्रांभः

५ तद्वत् विषयोद्रिक्तं तमः-प्रधानं मनः कलुषम्
तस्मिन् विराग-शुष्के शनैर् आविर्भवेत् सत्त्वम्

६ नग-नगर-दुर्ग-दुर्गम-सारितः परितः परिभ्रमत् चेतः
यदि नो लभते विषयं विष-यंत्रितमिव खेदमायाति

७ तुंबी-फलं जलांतर् बलात् अधः क्षिप्तमपि उपैत्यूर्ध्वम्
तद्वत् मनः स्वरूपे निहितं यत्नात्, बहिर् याति

८ प्राणस्पंद-निरोधात् सत्संगात् वासना-त्यागात्
हरिचरण-भक्तियोगात् मनः स्व-वेगं जहाति शनैः

[प्रबोध-सुधाकरः]

: ६ : चित्त-प्रसादः

१ यमेषु निरतो यस् तु नियमेषु च यत्नतः
विवेकिनस् तस्य चित्तं प्रसाद मधिगच्छति

२ आसुरीं संपदं त्यक्त्वा भजेत् यो दैव-संपदम्
मोक्षैककांक्षया नित्यं तस्य चित्तं प्रसीदति

३ परद्रव्य-परद्रोह-परनिंदा-परस्त्रियः
नालंबते मनो यस्य तस्य चित्तं प्रसीदति

४ आत्मवत् सर्व-भूतेषु यः समत्वेन पश्यति
सुखं दुःखं विवेकेन तस्य चित्तं प्रसीदति

५ अत्यंतं श्रद्धया भक्त्या गुरु मीश्वर मात्मनि
यो भज त्यनिशं क्षांतस् तस्य चित्तं प्रसीदति

६ शिष्टान्न मीशार्चन मार्यसेवां, तीर्थाटनं स्वाश्रमधर्म-निष्ठाम्
यमानुषक्तिं नियमानुवृत्तिं, चित्त-प्रसादाय वदन्ति तज्ज्ञाः

७ कट्वम्ल-लवणात्युष्ण-तीक्ष्ण-रूक्ष-विदाहिनाम्
पूति-पर्युषितादीनां त्यागः सत्त्वाय कल्पते

८ श्रुत्या सत्त्व-पुराणानां सेवया सत्त्व-वस्तुनः
अनुवृत्त्या च साधूनां सत्त्व-वृत्तिः प्रजायते

९ यस्य चित्तं निर्विषयं हृदयं यस्य शीतलम्
तस्य मित्रं जगत् सर्वं तस्य मुक्तिः कर-स्थिता

१० हित-परिमित-भोजी नित्य मेकांत-सेवी
सकृदुचितहितोक्तिः स्वल्प-निद्रा-विहारः
अनुनियमन-शीलो यो भज त्युक्त-काले
स लभत इह शीघ्रं साधुचित्त-प्रसादम्

[प्रबोध-सुधाकरः]

:७: जीवन-चर्या

१ प्रातः स्मरामि देवस्य सवितुर् भर्ग आत्मनः
वरेण्यं तत् धियो यो नश् चिदानंदे प्रचोदयात्

२ अत्यंत-मलिनो देहो देही चात्यंत-निर्मलः
असंगोऽहमिति ज्ञात्वा शौचं एतत् प्रचक्षते

३ मन्मनो मीनवत् नित्यं क्रीड त्यानंद-वारिधौ
सुस्नातस् तेन पूतात्मा सम्यग्-विज्ञान-वारिणा

४ अथा घ-मर्षणं कुर्यात् प्राणापान-निरोधतः
मनः पूर्णे समाधाय मग्न-कुंभो यथार्णवे

५ लय-विक्षेपयोः संधौ मनस् तत्र निरामिषम्
स संधिः साधितो येन स मुक्तो नात्र संशयः

६ सर्वत्र प्राणिनां देहे जपो भवति सर्वदा
हंसः सोऽहं इति ज्ञात्वा सर्व-बंधैर् विमुच्यते

७ तर्पणं स्व-सुखेनैव स्वेंद्रियाणां प्रतर्पणम्
मनसा मन आलोक्य स्वयं आत्मा प्रकाशते

८ आत्मनि स्व-प्रकाशाग्नौ चित्तं एकाहुतिं क्षिपेत्
अग्निहोत्री स विज्ञेयः, इतरा नाम-धारकाः

९ देहो देवालयः प्रोक्तो देही देवो निरंजनः
अर्चितः सर्वभावेन स्वानुभूत्या विराजते

१० अतीतानागतं किंचित् न स्मरामि न चिंतये
राग-द्वेषं विना प्राप्तं भुंजाम्यत्र शुभाशुभम्

११ अभयं सर्व-भूतानां दानं आहुर् मनीषिणः
निजानंदे स्पृहा नान्ये वैराग्यस्यावधिर् मतः

१२ ब्रह्माध्ययन-संयुक्तो ब्रह्मचर्या-रतः सदा
सर्वं ब्रह्मेति यो वेद ब्रह्म-चारी स उच्यते

१३ गृहस्थो गुण-मध्यस्थः शरीरं गृह मुच्यते
गुणाः कुर्वन्ति कर्माणि नाहं कर्तेति बुद्धिमान्

१४ किं उग्रैश् च तपोभिश् च यस्य ज्ञानमयं तपः
हर्षामर्ष-विनिर्मुक्तो वानप्रस्थः स उच्यते

१५ देहाभ्यासो हि संन्यासो नैव काषाय-वाससा
नाहं देहोऽहमात्मेति निश्चयो न्यास-लक्षणम्

[सदाचारानुसंधानम्]

साधना

प्रकरणानि

		श्लोक-संख्या
१	साधनोद्देशः	३
२	नित्यानित्यवस्तु–विवेकः	४
३	वैराग्यम्	२०
४	शमादि–षट्कम्	५३

	षट्कम्	१
१.	शमः	१४
२.	दमः	८
३.	तितिक्षा	१०
४.	उपरतिः	१०
५.	श्रद्धा	५
६.	समाधानम्	५

५	मुमुक्षुत्वम्	२०
		१००

[सर्ववेदांत-सिद्धांत-सारसंग्रहः]

: १ : साधनोद्देशः

१ चत्वारि साधनान्यत्र वदन्ति परमर्षयः
मुक्तिर् येषां नु सद्भावे नाभावे सिध्यति ध्रुवम्

२ आद्यं नित्यानित्यवस्तु-विवेकः साधनं मतम्
इहामुत्रार्थ-फलभोग-विरागो द्वितीयकम्

३ शमादिषट्क-संपत्तिस् तृतीयं साधनं मतम्
तुरीयं तु मुमुक्षुत्वं साधनं शास्त्र-संमतम्

: २ : नित्यानित्यवस्तु-विवेकः

१ ब्रह्मैव नित्यं अन्यत् तु अनित्यमिति वेदनम्
सोऽयं नित्यानित्यवस्तु-विवेक इति कथ्यते

२ मृदादि-कारणं नित्यं त्रिषु कालेषु दर्शनात्
घटाद्यनित्यं तत्-कार्यं यतस् तन्-नाश ईक्ष्यते

३ तथैवैतत् जगत् सर्वं अनित्यं ब्रह्म-कार्यतः
तत्-कारणं परं ब्रह्म भवेत् नित्यं मृदादिवत्

४ सर्वस्यानित्यत्वे सावयवत्वेन सर्वतः सिद्धे
वैकुंठादिषु नित्यत्व-मतिर् भ्रम एव मूढ-बुद्धीनाम्

: ३ : वैराग्यम्

१ ऐहिकामुष्मिकार्थेषु अनित्यत्वेन निश्चयात्
नैःस्पृह्यं तुच्छ-बुद्ध्या यत् तत् वैराग्यं इतीर्यते

२ काकस्य विष्ठावदसह्य-बुद्धिर्, भोग्येषु सा तीव्र-विरक्ति रिष्यते
प्रदृश्यते वस्तुनि यत्र दोषो, न तत्र पुंसो ऽस्ति पुनः प्रवृत्तिः

३ विरक्तितीव्रत्व-निदान माहुर्, भोग्येषु दोषेक्षणमेव सन्तः
अत्रापि चान्यत्र च विद्यमान–पदार्थ-संमर्शनमेव कार्यम्

४ यत्रास्ति लोके गति-तारतम्यं, उच्चावचत्वान्वितमत्र तत्कृतम्
यथेह तद्वत् खलु दुःखमस्ती त्यालोच्य को वा विरतिं न याति

५ गते ऽपि तोये सुषिरं कुलीरो, हातुं अशक्तो म्रियते विमोहात्
यथा, तथा गेह-सुखानुषक्तो, विनाश मायाति नरो भ्रमेण

६ आशा-पाश-शतेन पाशित-पदो नोत्थातुमेव क्षमः
काम-क्रोध-मदादिभिः प्रतिभटैः संरक्ष्यमाणो ऽनिशम्
संमोहावरणेन गोपनवतः संसार-कारागृहात्
निर्गन्तुं त्रिविधैषणा-परवशः कः शक्नुयात् रागिषु

७ काम एव यमः साक्षात् तृष्णा वतरणी नदी
विवेकिनां मुमुक्षूणां निलयस् तु यमालयः

८ यमस्य कामस्य च तारतम्यं, विचार्यमाणे महदस्ति लोके
हितं करोत्यस्य यमोऽप्रियः सन्, कामस्त्वनर्थं कुरुते प्रियः सन्

९ यमोऽसतामेव करोत्यनर्थं, सतां तु सौख्यं कुरुते हितः सन्
कामः सतामेव गतिं निरुंधन्, करोत्यनर्थं असतां नु का कथा

१० विश्वस्य वृद्धिं स्वयमेव कांक्षन्, प्रवर्तकं कामि-जनं ससर्ज
तेनैव लोकः परिमुह्यमानः, प्रवर्धते चन्द्रमसेव अब्धिः

११ कामस्य विजयोपायं सूक्ष्मं वक्ष्याम्यहं सताम्
संकल्पस्य परित्याग उपायः सुलभो मतः

१२ श्रुते दृष्टेऽपि वा भोग्ये यस्मिन् कस्मिंश्च वस्तुनि
समीचीनत्वधी-त्यागात् कामो नोदेति कर्हिचित्

१३ धनं भय-निबंधनं सतत-दुःख-संवर्धनं
प्रचंडतर-कर्दनं स्फुटित-बंध-संवर्धनम्
विशिष्टगुण-बाधनं कृपणधी-समाराधनम्
न मुक्ति-गति-साधनं भवति नापि हृच्छोधनम्

१४ सतामपि पदार्थस्य लाभात् लोभः प्रवर्धते
विवेको लुप्यते लोभात् तस्मिन् लुप्ते विनश्यति

१५ दहत्यलाभे निःस्वत्वं लाभे लोभो दहत्यमुम्
तस्मात् संतापकं वित्तं कस्य सौख्यं प्रयच्छति

१६ अलाभात् द्वि-गुणं दुःखं वित्तस्य व्यय-संभवे
ततो ऽपि त्रिगुणं दुःखं दुर्व्यये विदुषामपि

१७ कांतारे विजने वने जन-पदे सेतौ निरीतौ च वा
चोरैर् वापि तथेतरैर् नर-वरैर् युक्तो वियुक्तो ऽपि वा
निःस्वः स्वस्थतया सुखेन वसति ह्यादृीयमाणो जनैः
क्लिष्णात्येव धनी सदाकुल-मतिर् भीतश्च पुत्रादपि

१८ तस्मात् अनर्थस्य निदान-मर्थः, पुमर्थ-सिद्धिर् न भवत्यनेन
ततो वनान्ते निवसन्ति सन्तः, संन्यस्य सर्वं प्रतिकूल-मर्थम्

१९ विवेकजां तीव्र-विरक्तिमेव, मुक्तेर् निदानं निगदन्ति सन्तः
तस्मात् विवेकी विरतिं मुमुक्षुः, संपादयेत् तां प्रथमं प्रयत्नात्

२० वैराग्य-रहिता एव यमालय इवालये
क्लिश्नन्ति त्रिविधैस् तापैर् मोहिता अपि पंडिताः

:४: शमादि-षट्कम्

१ शमो दमस् तितिक्षो-परतिः श्रद्धा ततः परम्
समाधानमिति प्रोक्तं षड् एवैते शमादयः

१ शमः

१ एक-वृत्त्यैव मनसः स्व-लक्ष्ये नियत-स्थितिः
शम इत्युच्यते सद्भिः शम-लक्षण-वेदिभिः

२ उत्तमो मध्यमश् चैव जघन्य इति च त्रिधा
निरूपितो विपश्चिद्भिस् तत्तल्-लक्षण-वेदिभिः

३ स्व-विकारं परित्यज्य वस्तुमात्रतया स्थितः
मनसः सोत्तमा शान्तिर् ब्रह्मनिर्वाण-लक्षणा

४ प्रत्यक्-प्रत्यय–संतान-प्रवाह-करणं धियः
यदेषा मध्यमा शान्तिः शुद्धसत्त्वैकलक्षणा

५ विषय-व्यापृतिं त्यक्त्वा श्रवणैकमनःस्थितिः
मनसश् चेतरा शान्तिर् मिश्रसत्त्वैकलक्षणा

६ प्राच्योदीच्यांग-सद्भावे शमः सिध्यति नान्यथा
तीव्रा विरक्तिः प्राच्यांगं उदीच्यांगं दमादयः

७ कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मोहश्च मत्सरः
न जिताः षड् इमे येन तस्य शान्तिर् न सिध्यति

८ शब्दादि-विषयेभ्यो यो विषवत् न निवर्तते
तीव्र-मोक्षेच्छया भिक्षोस् तस्य शान्तिर् न सिध्यति

९ येन नाराधितो देवो यस्य नो गुर्वनुग्रहः
न वश्यं हृदयं यस्य तस्य शान्तिर् न सिध्यति

१० मनःप्रसाद-सिद्ध्यर्थं साधनं श्रूयतां बुधैः
मनःप्रसादो यत्-सत्त्वे यदभावे न सिध्यति

११ ब्रह्मचर्यं अहिंसा च दया भूतेष्ववक्रता
विषयेष्वतिवैतृष्ण्यं शौचं दंभ-विवर्जनम्

१२ सत्यं निर्ममता स्थैर्यं अभिमान-विसर्जनम्
ईश्वर-ध्यानपरता ब्रह्मविद्भिः सहस्थितिः

१३ ज्ञानशास्त्रैकपरता समता सुख-दुःखयोः
मानानासक्तिरेकांत-शीलता च मुमुक्षुता

१४ यस्यैतद् विद्यते सर्वं तस्य चित्तं प्रसीदति
न त्वेतद् धर्म-शून्यस्य प्रकारांतर-कोटिभिः

२ दमः

१ ब्रह्मचर्यादिभिर् धर्मैर् बुद्धेर् दोष-निवृत्तये
दंडनं दम इत्याहुर् दम-शब्दार्थ-कोविदाः

२ तत्तद्-वृत्ति-निरोधेन बाह्येन्द्रिय-विनिग्रहः
योगिनो दम इत्याहुर् मनसः शांति-साधनम्

३ इंद्रियेष्विंद्रियार्थेषु प्रवृत्तेषु यदृच्छया
अनुधावति तान्येव मनो वायुमिवानलः

४ इंद्रियेषु निरुद्धेषु त्यक्त्वा वेगं मनः स्वयम्
सत्त्वभावं उपादत्ते प्रसादस् तेन जायते

५ मनःप्रसादस्य निदानमेव, निरोधनं यत् सकलेंद्रियाणाम्
बाह्येंद्रिये साधु निरुध्यमाने, बाह्यार्थभोगो मनसो वियुज्यते

६ तेन स्वदौष्टयं परिमुच्य चित्तं, शनैः शनैः शान्ति-मुपाददाति
चितस्य बाह्यार्थ-विमोक्षमेव, मोक्षं विदुर् मोक्षण-लक्षणज्ञाः

७ दमं विना साधुमनःप्रसाद,-हेतुं न विद्मः सुकरं मुमुक्षोः
दमेन चित्तं निज-दोषजातं, विसृज्य शान्ति समुपैति शीघ्रम्

८ सर्वेंद्रियाणां गति-निग्रहेण, भोग्येषु दोषाद्यवमर्शनेन
ईशप्रसादात् च गुरोः प्रसादात्,शान्ति समाया-त्यचिरेण चित्तम्

३ तितिक्षा

१ आध्यात्मिकादि यद् दुःखं प्राप्तं प्रारब्ध-वेगतः
अचिंतया तत्-सहनं तितिक्षेति निगद्यते

२ रक्षा तितिक्षा-सदृशी मुमुक्षोर्
न विद्यते ऽसौ पविना न भिद्यते
ययैव धीराः कवचीव विघ्नान्
सर्वांस् तृणीकृत्य जयन्ति मायाम्

३ क्षमावतामेव हि योग-सिद्धिः
स्वाराज्यलक्ष्मी-सुखभोग-सिद्धिः
क्षमा-विहीना निपतन्ति विघ्नैर्
वातैर् हताः पर्ण-चया इव द्रुमात्

४ तितिक्षया तपो दानं यज्ञस् तीर्थं व्रतं श्रुतम्
भूतिः स्वर्गो ऽपवर्गश्च प्राप्यते तत्तदर्थिभिः

५ ब्रह्मचर्यं अहिंसा च साधूनां अप्यगर्हणम्
पराक्षेपादि-सहनं तितिक्षोरेव सिध्यति

६ तस्मात् मुमुक्षोराधिका तितिक्षा, संपादनीयेप्सितकार्य-सिद्ध्यै
तीव्रा मुमुक्षा च महत्युपेक्षा, चोभे तितिक्षा-सहकारि कारणम्

७ तत्तत्काल-समागतामय-ततेः शान्त्यै प्रवृत्तो यदि
स्यात् तत्तत्-परिहारकौषध-रतम् तच्चिंतने तत्परः
तद्भिक्षुः श्रवणादि-धर्म-रहितो भूत्वा मृतश् चेत् ततः
किं सिद्धेः फलमाप्नुयात् उभयथा भ्रष्टो भवेत् स्वार्थतः

८ योगं अभ्यस्यतो भिक्षोर् योगात् चलित-चेतसः
प्राप्य पुण्य-कृतांल् लोकान् इत्यादि प्राह केशवः

९ न तु कृत्वैव संन्यासं तूष्णीमेव मृतस्य हि
पुण्यलोक-गतिं ब्रूते भगवान् न्यासमात्रतः

१० तस्मात् तितिक्षया सोढ्वा तत्तद्-दुःखं उपागतम्
कुर्यात् शक्त्यनुरूपेण श्रवणादि शनैः शनैः

४ उपरतिः

१ साधनत्वेन दृष्टानां सर्वेषामपि कर्मणाम्
विधिना यः परित्यागः स संन्यासः सतां मतः

२ उपरमयति कर्माणी-त्युपरति-शब्देन कथ्यते न्यासः
न्यासेन हि सर्वेषां श्रुत्या प्रोक्तो विकर्मणां त्यागः

३ उत्पाद्यं आप्यं संस्कार्यं विकार्यं परिगण्यते
चतुर्विधं कर्म-साध्यं फलं नान्यत् इतः परम्

४ नैतत् अन्यतरं ब्रह्म कदा भवितु-मर्हति
स्वतःसिद्धं सर्वदाप्तं शुद्धं निर्मल-मक्रियम्

५ इत्येवं वस्तुनस् तत्त्वं श्रुतियुक्ति-व्यवस्थितम्
तस्मात् न कर्म-साध्यत्वं ब्रह्मणो ऽस्ति कुतश्चन

६ प्रत्यग्ब्रह्म-विचारपूर्व-मुभयोर् एकत्व-बोधाद् विना
कैवल्यं पुरुषस्य सिध्यति परब्रह्मात्मता-लक्षणम्
न स्नानैरपि कीर्तनैरपि जपैर् नो कृच्छ्र-चांद्रायणैर्
नो वा-प्यध्वर-यज्ञ-दान-निगमैर् नो मंत्र-तंत्रैरपि

७ ज्ञानादेव तु कैवल्यं इति श्रुत्या निगद्यते
ज्ञानस्य मुक्ति-हेतुत्वं अन्य-व्यावृत्तिपूर्वकम्

८ यथाग्नेस् तृणकूटस्य, तेजसस् तिमिरस्य च
सहयोगो न घटते तथैव ज्ञान-कर्मणोः

९ संन्यसेत् सुविरक्तः सन् इहामुत्रार्थतः सुखात्
अविरक्तस्य संन्यासो निष्फलो ऽयाज्य-यागवत्

१० संन्यस्य तु यतिः कुर्यात् न पूर्वविषय-स्मृतिम्
तां तां, तत्-स्मरणे तस्य जुगुप्सा जायते यतः

५ श्रद्धा

१ गुरु-वेदांत-वाक्येषु बुद्धिर् या निश्चयात्मिका
सत्यं इत्येव सा श्रद्धा निदानं मुक्ति-सिद्धये

२ श्रद्धावतां एव सतां पुमर्थः
समीरितः सिध्यति नेतरेषाम्
उक्तं सुसूक्ष्मं परमार्थ-तत्त्वं
श्रद्धत्स्व सोम्येति च वक्ति वेदः

३ श्रद्धा-विहीनस्य तु न प्रवृत्तिः
प्रवृत्ति-शून्यस्य न साध्य-सिद्धिः
अश्रद्धयैवाभिहताश्च सर्वे
मज्जन्ति संसार-महासमुद्रे

४ अस्तीत्येवोपलब्धव्यं वस्तु-सद्भाव-निश्चयात्
सद्भाव-निश्चयस् तत्र श्रद्धया शास्त्र-सिद्धया

५ तस्मात् श्रद्धा सुसंपाद्या गुरु-वेदांत-वाक्ययोः
मुमुक्षोः श्रद्दधानस्य फलं सिध्यति नान्यथा

६ समाधानम्

१ श्रुत्युक्तार्थावगाहाय विदुषा ज्ञेय-वस्तुनि
चित्तस्य सम्यग् आधानं समाधानं इतीर्यते

२ चित्तस्य साध्यैकपरत्वमेव
पुमर्थ-सिद्धेर् नियमेन कारणम्
नैवान्यथा सिध्यति साध्य मीषद्
मनः-प्रमादे विफलः प्रयत्नः

३ चित्तं च दृष्टिं करणं तथान्यत्
एकत्र बध्नाति हि लक्ष्य-भेत्ता
किंचित् प्रमादे सति लक्ष्य-भेत्तुर्
बाण-प्रयोगो विफलो यथा तथा

४ सिद्धेश् चित्त-समाधानं असाधारण-कारणम्
यतस् ततो मुमुक्षूणां भवितव्यं सदामुना

५ अत्यंत-तीव्र-वैराग्यं फल-लिप्सा महत्तरा
तदेतत् उभयं विद्यात् समाधानस्य कारणम्

:५: मुमुक्षुत्वम्

१ ब्रह्मात्मैकत्व-विज्ञानात् यद् विद्वान् मोक्तु मिच्छति
संसार-पाशबंधं तत् मुमुक्षुत्वं निगद्यते

२ साधनानां तु सर्वेषां मुमुक्षा मूल-कारणम्
अनिच्छो रप्रवृत्तस्य क्व श्रुतिः क्व नु तत्-फलम्

३ तीव्र-मध्यम-मंदातिमंद-भेदाश् चतुर् विधाः
मुमुक्षा तत्-प्रकारोऽपि कीर्त्यते श्रूयतां बुधैः

४ तापैस् त्रिभिर् नित्य मनेकरूपैः
संतप्यमानो क्षुभितांतरात्मा
परिग्रहं सर्व मनर्थ-बुद्ध्या
जहाति सा तीव्रतरा मुमुक्षा

५ ताप-त्रयं तीव्र मवेक्ष्य वस्तु
दृष्ट्वा कलत्रं तनयान् विहातुम्
मध्ये द्वयोर् लोडन मात्मनो यत्
सैषा मता माध्यमिकी मुमुक्षा

६ मोक्षस्य कालोऽस्ति किमद्य मे त्वरा
भुक्त्वैव भोगान् कृत-सर्वकार्यः
मुक्त्यै यतिष्ये ऽहमथेति बुद्धिर्
एषैव मंदा कथिता मुमुक्षा

७ मार्गे प्रयातुर् मणि-लाभवत् मे
लभेत मोक्षो यदि तर्हि धन्यः
इत्याशया मूढ-धियां मतिर् या
सैषाऽतिमंदाऽभिमता मुमुक्षा

८ जन्मानेक-सहस्रेषु तपसाऽऽराधितेश्वरः
तेन निःशेष-निर्धूत-हृदयस्थित-कल्मषः

९ शास्त्रविद् गुणदोष-ज्ञो भोग्यमात्रे विनिःस्पृहः
नित्यानित्य-पदार्थ-ज्ञो मुक्ति-कामो दृढ-व्रतः

१० निष्टप्तं अग्निना पात्रं उद्वास्य त्वरया यथा
जहाति गेहं तद्वच्च तीव्रमोक्षेच्छया द्विजः

११ स एव सद्यस् तरति संसृतिं गुर्वनुग्रहात्
यस्तु तीव्र-मुमुक्षुः स्यात् स जीवन्नेव मुच्यते

१२ जन्मांतरे मध्यमस् तु तदन्यस् तु युगान्तरे
चतुर्थः कल्प-कोट्यां वा नैव बंधात् विमुच्यते

१३ खादते मोदते नित्यं शुनकः सूकरः खरः
तेषां एषां विशेषः को वृत्तिर् येषां तु तैः समा

१४ यावत् नाश्रयते रोगो यावत् नाक्रमते जरा
यावत् न धीर् विपर्येति यावत् मृत्युं न पश्यति

१५ तावदेव नरः स्वस्थः सारग्रहण-तत्परः
विवेकी प्रयतेताशु भवबंध-विमुक्तये

१६ देवर्षि-पितृ-मर्त्यर्ण-बंधमुक्तास् तु कोटिशः
भवबंध-विमुक्तस् तु यः कश्चिद् ब्रह्मवित्तमः

१७ अंतर्बंधेन बद्धस्य किं बहिर्बंध-मोचनैः
तत् अंतर्बंध-मुक्त्यर्थं क्रियतां कृतिभिः कृतिः

१८ कृति-पर्यवसानैव मता तीव्र-मुमुक्षुता
अन्या तु रंजनामात्रा यत्र नो दृश्यते कृतिः

१९ शिरो विवेकस् त्वत्यंतं वैराग्यं वपुरुच्यते
शमादयः षट् अंगानि मोक्षेच्छा प्राण इष्यते

२० ईदृशांग-समायुक्तो जिज्ञासुर् युक्ति-कोविदः
शूरो मृत्युं निहंत्येव सम्यग्ज्ञानासिना ध्रुवम्

भक्ति-मार्गः

मराठी ग्रंथ संग्रहालय, ठाणे. स्थलप्रत.
अनुक्रम २०९११ वि: काव्य
क्रमांक १४९ ८ नों. दि. १२-१२-६७

प्रकरणानि

I वैष्णवी भक्तिः

स्तोत्राणि	श्लोक-संख्या
१. षट्पदी	७
२. अच्युताष्टकम्	८
३. कृष्णाष्टकम्	९
४. गोविंद-पंचकम्	५
५. भजे पांडुरंगम्	६
भक्ति-विचारः	
६. भक्ति-तत्त्वम्	१४
७. सगुण-निर्गुणम्	१०
मंत्रः	
८. त्रिंशदक्षर-मंत्रः	१

II शैवी उपासना

९. महः शैवमीडे	७
१०. अपराध-क्षमापनम्	१

III मातृ-वंदनम्

११. क्वचिदपि कुमाता न भवति	६
१२. आनन्द-लहरी	८
१३. माता अन्नपूर्णा	६
१४. गंगा-स्तवः	४
१५. नर्मदाष्टकम्	८
	१००

I वैष्णवी भक्तिः — स्तोत्राणि

:१: षट्-पदी

१ अविनय-मपनय विष्णो दमय मनः शमय विषय-मृगतृष्णाम्
भूत-दयां विस्तारय तारय संसार-सागरतः

२ दिव्यधुनी-मकरंदे परिमलपरिभोग-सच्चिदानंदे
श्रीपति-पदारविंदे भवभय-खेदच्छिदे वंदे

३ सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस् त्वम्
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः

४ उद्धृत-नग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशि-दृष्टे
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भव-तिरस्कारः

५ मत्स्यादिभि-रवतारैर् अवतारवता-वता सदा वसुधाम्
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवताप-भीतो ऽहम्

६ दामोदर गुण-मंदिर सुंदर-वदनारविंद गोविंद
भवजलधि-मथनमंदर परमं दर-मपनय त्वं मे

* * *

७ नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ
इति षट्पदी मदीये वदन-सरोजे सदा वसतु

[षट्-पदी]

:२: अच्युताष्टकम्

१ अच्युतं केशवं राम-नारायणं
कृष्ण-दामोदरं वासुदेवं हरिम्
श्री-धरं मा-धवं गोपिका-वल्लभं
जानकी-नायकं रामचंद्रं भजे

२ अच्युतं केशवं सत्यभामा-धवं
माधवं श्रीधरं राधिका-राधितं
इंदिरा-मंदिरं चेतसा सुंदरं
देवकी-नंदनं नंद-जं संदधे

३ विष्णवे जिष्णवे शंखिने चक्रिणे
रुक्मिणी-रागिणे जानकी-जानये
वल्लवी-वल्लभाया॰र्चिताया॰त्मने
कंस-विध्वंसिने वंशिने ते नमः

४ कृष्ण गोविंद हे राम नारायण
श्री-पते वासुदेवा॰जित श्री-निधे
अच्युतानंत हे माधवा॰धोक्षज
द्वारका-नायक द्रौपदी-रक्षक

५ राक्षस-क्षोभितः सीतया शोभितो
दंडकारण्यभू-पुण्यताकारणः
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितो
ऽगस्त्य-संपूजितो राघवः पातु माम्

६ धेनुकारिष्टको ऽनिष्टकृद् द्वेषिणां
केशि-हा कंस-हृद् वंशिका-वादकः
पूतना-कोपकः सूरजा-खेलनो
बाल-गोपालकः पातु मां सर्वदा

७ विद्युदुद्द्योतवान् प्रस्फुरद्वाससं
प्रावृडंभोदवत् प्रोल्लसद्-विग्रहम्
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं
लोहितांघ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे

८ कुंचितैः कुंतलैर् भ्राजमानाननं
रत्न-मौलिं लसत्-कुंडलं गंडयोः
हार-केयूरकं कंकण-प्रोज्ज्वलं
किंकिणी-मंजुलं श्यामलं तं भजे

[अच्युताष्टकम्]

: ३ : कृष्णाष्टकम्

१ श्रिया श्लिष्टो विष्णुः स्थिरचर-वपुर् वेद-विषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरि रसुर-हंता ब्ज-नयनः
गदी शंखी चक्री विमल-वनमाली स्थिर-रुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

२ यतः सर्वं जातं वियदनिल-मुख्यं जगदिदं
स्थितौ निःशेषं यो ऽवति निज-सुखांशेन मधु-हा
लये सर्वं स्वास्मिन् हरति कलया यस् तु स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

३ असून् आयम्यादौ यम-नियम-मुख्यैः सु-करणैर्
निरुध्येदं चित्तं हृदि विलय मानीय सकलम्
य मीड्यं पश्यन्ति प्रवर-मतयो मायिन मसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

४ पृथिव्यां तिष्ठन् यो यमयति महीं वेद न धरा
य मित्यादौ वेदो वदति जगतां ईश ममलम्
नियन्तारं ध्येयं मुनि-सुर-नृणां मोक्षद मसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

५ महेंद्रादिर् देवो जयति दितिजान् यस्य बलतो
न कस्य स्वातंत्र्यं क्वचिदपि कृतौ यत्-कृति-मृते
कवित्वादेर् गर्वं परिहरति यो ऽसौ विजयिनः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

६ विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकर-मुखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृति-भयं याति जनता
विना यस्य स्मृत्या कृमिशत-जनिं याति स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

७ नरातंकोत्तंकः शरण-शरणो भ्रांति-हरणो
घनश्यामो वामो व्रजशिशु-वयस्यो ऽर्जुन-सखः
स्वयंभूर् भूतानां जनक उचिताचार-सुखदः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

८ यदा धर्म-ग्लानिर् भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटित-वपुः सेतुधृगजः
सतां धाता स्वच्छो निगमगण-गीतो व्रज-पतिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णो ऽक्षि-विषयः

* * *

९ इति हरि रखिलात्मा राधितः शंकरेण
श्रुतिविशद-गुणो ऽसौ मातृ-मोक्षार्थ माद्यः
यतिवर-निकटे श्री-युक्त आविर् बभूव
स्वगुण-वृत उदारः शंखचक्राब्ज-हस्तः

[कृष्णाष्टकम्]

:४: गोविंद-पंचकम्

१ सत्यं ज्ञान मनंतं नित्य मनाकाशं परमाकाशं
गोष्ठप्रांगण-रिंगणलोल मनायासं परमायासम्
मायाकल्पित-नानाकार मनाकारं भुवनाकारम्
क्ष्मा-मा-नाथ मनाथं प्रणमत गोविंदं परमानंदम्

२ त्रैविष्टप-रिपुवीर-घ्नं क्षितिभार-घ्नं भवरोग-घ्नं
कैवल्यं नवनीताहार मनाहारं भुवनाहारम्
वैमल्यस्फुट-चेतोवृत्ति-विशेषाभास मनाभासं
शैवं केवल-शांतं प्रणमत गोविंदं परमानंदम्

३ गो-पालं भूलीलाविग्रह-गोपालं कुल-गोपालं
गोपीखेलन-गोवर्धनधृति-लीलालालित-गोपालम्
गोभिर् निगदित-गोविंदस्फुटनामानं बहु-नामानं
गोपी-गोचरदूरं प्रणमत गोविंदं परमानंदम्

४ कांतं कारण-कारण मादि मनादिं काल मनाभासं
कालिंदीगत-कालियशिरसि मुहुर् नृत्यन्तं सुनृत्यंतम्
कालं काल-कलातीतं कलिताशेषं कलिदोष-घ्नम्
कालत्रय-गति-हेतुं प्रणमत गोविंदं परमानंदम्

५ वृंदावन-भुवि वृंदारकगण-वृंदा-राधित वन्दे ऽहम्
कुंदाभामल-मंदस्मेर-सुधानंदं सुहृदानंदम्
वंद्याशेष-महामुनिमानस-वंद्यानंद-पदद्वंद्वम्
वंद्याशेष-गुणाब्धिं प्रणमत गोविंदं परमानंदम्

[गोविंदाष्टकम्]

: ५ : भजे पांडुरंगम्

१ महायोग-पीठे तटे भीमरथ्यां, वरं पुंडरीकाय दातुं मुनींद्रैः
समागत्य तिष्ठन्त मानंदकंदं, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

२ तडिद्-वाससं नीलमेघावभासं, रमा-मंदिरं सुंदरं चित्-प्रकाशम्
वरं त्विष्टिकायां सम-न्यस्त-पादं, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

३ प्रमाणं भवाब्धे रिदं मामकानां, नितंबः कराभ्यां धृतो येन तस्मात्
विधातुर् वसत्यै धृतो नाभिकोशः, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

४ शरच्चंद्रबिंबाननं चारुहासं, लसत्कुंडल-क्रांतगंडस्थलांगम्
जपाराग-बिंबाधरं कंजनेत्रं, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

५ विभुं वेणुनादं चरंतं दुरंतं, स्वयं लीलया गोपवेषं दधानम्
गवां वृन्दकानन्दनं चारुहासं, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

६ अजं रुक्मिणी-प्राणसंजीवनं तं, परं धाम कैवल्य मेकं तुरीयम्
प्रसन्नं प्रपन्नार्ति-हं देवदेवं, परब्रह्म-लिंगं भजे पांडुरंगम्

[पांडुरंगाष्टकम्]

:६: भक्ति-विचारः — भक्ति-तत्त्वम्

१ द्वेधा भक्तिः

१ चित्ते सत्त्वोत्पत्तौ तडिदिव बोधोदयो भवति
तर्ह्येव स स्थिरः स्यात् यदि चित्तं शुद्धि मुपयाति

२ शुध्यति हि नांतरात्मा कृष्णपदांभोजभक्ति मृते
वसनमिव क्षारोदैर् भक्त्या प्रक्षाल्यते चेतः

३ स्थूला सूक्ष्मा चेति द्वेधा हरिभक्ति रुद्दिष्टा
प्रारंभे स्थूला स्यात् सूक्ष्मा तस्याः सकाशाच्च

२ स्थूला भक्तिः

४ स्वाश्रम-धर्माचरणं कृष्णप्रतिमार्चनोत्सवो नित्यम्
विविधोपचार-करणैर् हरि-दासैः संगमः शश्वत्

५ कृष्णकथा-संश्रवणे महोत्सवः सत्य-वादश् च
पर-युवतौ द्रविणे वा परापवादे पराङ्मुखता

६ ग्राम्यकथासूद्वेगः सुतीर्थ-गमनेषु तात्पर्यम्
यदुपतिकथा-वियोगे व्यर्थं गतमायुरिति चिंता

७ एवं कुर्वति भक्तिं कृष्णकथानुग्रहोत्पन्ना
समुदेति सूक्ष्म-भक्तिर् यस्या हरिरंतराविशति

३ सूक्ष्मा भक्तिः

८ स्मृति-सत्पुराण-वाक्यैर् यथाश्रुतायां हरेर् मूर्तौ
मानस-पूजाभ्यासो विजन-निवासे ऽपि तात्पर्यम्

९ सत्यं समस्त-जंतुषु कृष्णस्याविःस्थितेर् ज्ञानम्
अद्रोहो भूतगणे ततस् तु भूतानुकंपा स्यात्

१० प्रमित-यदृच्छा-लाभे संतुष्टिर्, दार-पुत्रादौ
ममता-[illegible]तो निरहंकारत्वमक्रोधः

११ मृदु-भाषिता प्रसादो निज-निंदायां स्तुतौ समता
सुखदुःख-शीतलोष्ण-द्वंद्वसहिष्णुत्वमापदो न भयम्

१२ निद्राहारविहारेष्वनादरः संग-राहित्यम्
वचने च अनवकाशः कृष्ण-स्मरणेन शाश्वती शांतिः

१३ केनापि गीयमाने हरिगीते वेणुनादे वा
आनंदाविर्भावो युगपत् स्याद् हृष्टसात्त्विकोद्रेकः

१४ जंतुषु भगवद्भावं भगवति भूतानि पश्यति क्रमशः
एतादृशी दशा चेत् तदैव हरिदास-वर्यः स्यात्

[प्रबोध-सुधाकरः]

:७: सगुण-निर्गुणम्

१ भूतेष्वंतर्यामी ज्ञानमयः सच्चिदानंदः
प्रकृतेः परः परात्मा यदुकुल-तिलकः स एवायम्

२ ननु सगुणो दृश्य-तनुस् तथैकदेशाधिवासश् च
स कथं भवेत् परात्मा प्राकृतवत् रागरोष-युतः

३ इतरे दृश्य-पदार्था लक्ष्यन्ते ऽनेन चक्षुषा सर्वे
भगवान् अनया दृष्ट्या न लक्ष्यते ज्ञानदृग्-गम्यः

४ यद् विश्वरूपदर्शन-समये पार्थाय दत्तवान् भगवान्
दिव्यं चक्षुस्, तस्मात् अदृश्यता युज्यते नृ-हरौ

५ यद्यपि साकारो ऽयं तथैकदेशी विभाति यदुनाथः
सर्वगतः सर्वात्मा तथाप्ययं सच्चिदानंदः

६ तस्मात् न कोऽपि शत्रुर् नो मित्रं नाप्युदासीनः
नृहरिः सन्मार्गस्थः सफलः शाखीव यदुनाथः

७ लोहशलाका-निवहैः स्पर्शाश्मनि भिद्यमाने ऽपि
स्वर्णत्व मेति लौहं द्वेषादपि विद्विषां तथा प्राप्तिः

८ भूत-समत्वं नृहरेः समो हि मशकेन नागेन
लोकैः समस् त्रिभिर् वे त्युपनिषदा भाषितः साक्षात्

९ परमार्थतो विचारे गुड-तन्मधुरत्व-दृष्टांतात्
नश्वर मपि नृ-शरीरं परमात्माकारतां याति

१० किं पुन रनंत-शक्तेर् लीला-वपु रीश्वस्येह
कर्मा ण्यलौकिकानि स्वमायया विदधतो नृहरेः

[प्रबोध-सुधाकरः]

त्रिंशदक्षर-मंत्रः

१ नारायण नारायण जय गोविंद हरे
नारायण नारायण जय गोपाल हरे

[नारायण-स्तोत्रम्]

II शैवी उपासना

:१: महः शैव मीडे

१ अनाद्यंत माद्यं परं तत्त्व मर्थं
चिदाकारमेकं तुरीयं त्वमेयम्
हरिब्रह्म-मृग्यं परब्रह्मरूपं
मनोवागतीतं महः शैव मीडे

२ शिवेशान-तत्पूरुषाघोर-वामा-
दिभिर् ब्रह्मभिर् हृन्मुखैः षड्भि रंगैः
अनौपम्य-षट्त्रिंशतं तत्त्वविद्यां
अतीतं परं त्वां कथं वेत्ति को वा

३ जगन्नाथ मन्नाथ गौरी-सनाथ
प्रपन्नानुकंपिन् विपन्नार्ति-हारिन्
महःस्तोम-मूर्ते समस्तैकबंधो
नमस् ते नमस् ते पुनस् ते नमो ऽस्तु

४ त्वदन्यः शरण्यः प्रपन्नस्य नेति
प्रसीद स्मरन्नेव हन्यास् तु दैन्यम्
न चेत् ते भवेद् भक्तवात्सल्य-हानिस्
ततो मे दयालो दयां संनिधेहि

५ अयं दान-कालस्त्वहं दान-पात्रं
भवान् नाथ दाता त्वदन्यं न याचे
भवद्भक्तिमेव स्थिरां देहि मह्यं
कृपाशील शंभो कृतार्थोऽस्मि तस्मात्

६ पशुं वेत्सि चेन् मां त्वमेवाधिरूढः
कलंकीति वा मूर्ध्नि धत्से त्वमेव
द्विजिह्वः पुनः सोऽपि ते कंठभूषा
त्वदंगीकृताः सर्व सर्वेऽपि धन्याः

७ अकंठे कलंकात् अनंगे भुजंगात्
अपाणौ कपालात् अभालेऽनलाक्षात्
अमौलौ शशांकात् अवामे कलत्रात्
अहं देव मन्यं न मन्ये न मन्ये

[शिव-भुजंगप्रयात-स्तोत्रम्]

: १० : अपराध-क्षमापनम्

१ कर-चरण-कृतं वाक्-काय-जं कर्म-जं वा
श्रवण-नयन-जं वा मानसं वा पराधम्
विहित मविहितं वा सर्व मेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शंभो

[शिव-मानसपूजा]

III मातृ-वंदनम्

:११: क्वचिदपि कुमाता न भवति

१ न मंत्रं नो तंत्रं तदपि च न जाने स्तुति-महो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुति-कथाः
न जाने मुद्रास् ते तदपि च न जाने विलपनम्
परं जाने मातस् त्वदनुसरणं क्लेश-हरणम्

२ विधे-रज्ञानेन द्रविण-विरहेणा-लसतया
विधेयाशक्यत्वात् तव चरणोर् या च्युति-रभूत्
तदेतत् क्षंतव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति

३ पृथिव्यां पुत्रास् ते जननि बहवः संति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरल-तरलो ऽहं तव सुतः
मदीयो ऽयं त्यागः समुचित-मिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति

४ जगन्मातर् मातस् तव चरण-सेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविण-मपि भूयस् तव मया
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत् प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति

५ श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपम-गिरा
निरांतको रंको विहरति चिरं कोटि-कनकैः
तवा पर्णे कर्णे विशति मनुवर्ण फल मिदम्
जनः को जानीते जननि जपनीयं जप-विधौ

६ जगदंब विचित्रमत्र किं, परिपूर्णा करुणा ऽस्ति चेन् मयि
अपराध-परंपरावृतं, न हि माता समुपेक्षते सुतम्

[बृहत्-स्तोत्र-रत्नाकरतः]

:१२: आनंद-लहरी

१ भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर् न वदनैः
प्रजानां ईशानस् त्रिपुर-मथनः पंचभि रपि
न षड्भिः सेनानीर् दशशत-मुखै रप्यहि-पतिस्
तदा न्येषां केषां कथय कथ मस्मिन्न् अवसरः

२ घृत-क्षीर-द्राक्षा-मधु–मधुरिमा कै रपि पदैर्
विशिष्या नाख्येयो भवति रसनामात्र-विषयः
तथा ते सौंदर्यं परमशिव-दृङ्मात्र-विषयः
कथंकारं ब्रूमः सकलनिगमागोचर-गुणे

३ सपर्णा आकीर्णा कतिपय-गुणैः सादर मिह
श्रयन्त्य न्ये वल्लीं मम तु मति रेवं विलसति
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर् यत्परिवृतः
पुराणो ऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्य-पदवीम्

४ विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नाय-जननी
त्व मर्थानां मूलं धनद-नमनीयांघ्रिकमले
त्व मादिः कामानां जननि कृत-कंदर्पविजये
सतां भक्तेर् बीजं त्वमसि परमब्रह्म-महिषी

५ प्रभूता भक्तिस् ते यदपि न ममा लोल-मनसस्
त्वया तु श्रीमत्या सदय मवलोक्यो ऽह मधुना
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातक-मुखे
भृशं शंके कैर् वा विधिभि रनुनीता मम मतिः

६ कृपापांगालोकं वितर तरसा साधु-चरिते
न ते युक्तो पेक्षा मयि शरण-दीक्षां उपगते
न चेत् इष्टं दद्यात् अनुपद महो कल्प-लतिका
विशेषः सामान्यैः कथ मितरवल्ली-परिकरैः

७ अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेम-पदवीं
यथा रथ्या-पाथः शुचि भवति गंगौघ-मिलितम्
तथा तत्तत्पापैर् अतिमलिन मंतर् मम यदि
त्वयि प्रेम्णा सक्तं कथ मिव न जायेत विमलम्

८ त्वदन्यस्मात् इच्छाविषय-फल-लाभे न नियमस्
त्व मर्थानां इच्छाधिक मपि समर्था वितरणे
इति प्राहुः प्रांचः कमलभवनाद्यास् त्वयि मनस्
त्वदासक्तं नक्तंदिव मुचित मीशानि कुरु तत्

: १३ : माता अन्नपूर्णा

१ नित्यानंदकरी वराभयकरी सौंदर्य-रत्नाकरी
निर्धूताखिलघोर-पावनकरी प्रत्यक्ष-माहेश्वरी
प्रालेयाचल-वंश-पावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलंबनकरी माता न्नपूर्णेश्वरी

२ योगानंदकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी
चंद्रार्कानल-भासमान-लहरी त्रैलोक्य-रक्षाकरी
सर्वैश्वर्य-समस्त-वांछितकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलंबनकरी माता न्नपूर्णेश्वरी

३ कैलासाचल-कंदरालयकरी गौरी उमा शंकरी
कौमारी निगमार्थ-गोचरकरी ओंकारबीजाक्षरी
मोक्षद्वार-कपाट-पाटन-करी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलंबनकरी माता न्नपूर्णेश्वरी

४ दृश्यादृश्य-प्रभूत-वाहनकरी ब्रह्मांड-भांडोदरी
लीलानाटक-सूत्र-भेदनकरी विज्ञानदीपांकुरी
श्रीविश्वेश-मनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलंबनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी

५ अन्नपूर्णे सदा-पूर्णे शंकर-प्राणवल्लभे
ज्ञानवैराग्य-सिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वती

६ माता च पार्वती देवी, पिता देवो महेश्वरः
बांधवाः शिव-भक्ताश् च, स्वदेशो भुवन-त्रयम्

[अन्नपूर्णा-स्तोत्रम्]

: १४ : गंगा-चतुष्टयम्

१ ब्रह्मांडं खंडयंती हर-शिरसि जटावल्लि मुल्लासयंती
स्वर्लोकात् आपतंती कनकगिरि-गुहा-गंड-शैलात् स्खलंती
क्षोणी-पृष्ठे लुठंती दुरितचय-चमूर् निर्भरं भर्त्सयंती
पाथोधिं पूरयंती सुरनगर-सरित् पावनी नः पुनातु

२ आदौ आदि-पितामहस्य नियमव्यापार-पात्रे जलं
पश्चात् पन्नग-शायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्
भूयः शंभुजटा-विभूषणमणिर् जह्नोर् महर्षे रियं
कन्या कल्मष-नाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते

३ शैलेंद्रात् अवतारिणी निजजले मज्जज्-जनोत्तारिणी
पारावार-विहारिणी भवभयश्रेणी-समुत्सारिणी
शेषाहे रनुकारिणी हरशिरोवल्ली-दलाकारिणी
काशीप्रांत-विहारिणी विजयते गंगा मनो-हारिणी

४ कुतो ऽवीचिर् वीचिस् तव यदि गता लोचन-पथं
त्व मापीता पीतांबरपुर-निवासं वितरसि
त्वदुत्संगे गंगे पतति यदि कायस् तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतव-पद-लाभो ऽप्यतिलघुः

[गंगाष्टकम्]

: १५ : नर्मदाष्टकम्

१ सबिंदुसिंधुर-स्खलत्-तरंगभंग-रंजितं
द्विषत्-सुपापजात-जातकारि-वारि-संयुतम्
कृतांतदूत-काल-भूत-भीति-हारि वर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे

२ त्वदंबुलीन-दीनमीन-दिव्यसंप्रदायकं
कलौ मलौघभार-हारि सर्वतीर्थ-नायकम्
सुमत्स्य-कच्छ-नक्र-चक्र-चक्रवाक-शर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे

३ महागभीर-नीरपूर-पाप-धूत-भूतलं
ध्वनत्-समस्त-पातकारि दारितापदाचलम्
जगल्-लये महाभये मृकंडुसूनु-हर्म्य-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे

४ गतं तदैव मे भयं त्वदंबु वीक्षितं यदा
मृकंडुसूनु-शौनकासुरारि-सेवि सर्वदा
पुनर्भवाब्धि-जन्मजं भवाब्धि-दुःख-वर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे

५ अलक्षलक्ष-किन्नरामरासुरादि-पूजितम्
सुलक्षनीरतीर-धीरपक्षिलक्ष-कूजितम्
वसिष्ठ-शिष्ट-पिप्पलादि-कर्दमादि-शर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे

६ सनत्कुमार-नाचिकेत-कश्यपात्रि-षट्पदैर्
धृतं स्वकीय-मानसेषु नारदादि-षट्पदैः
रवींदु-रंतिदेव-देवराज-कर्म-शर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे

७ अलक्ष-लक्षलक्षपाप-लक्षसारसायुधं
ततस् तु जीवजंतुतंतु-भुक्तिमुक्ति-दायकम्
विरंचि-विष्णु-शंकर-स्वकीयधाम-वर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे

८ अहो मृतं स्वनं श्रुतं महेश-केशजा-तटे
किरात-सूत-वाडवेषु पंडिते शठे नटे
दुरंत-पापताप-हारि सर्वजंतु-शर्म-दे
त्वदीय-पादपंकजं नमामि देवि नर्म-दे

[नर्मदाष्टकम्]

वेदान्त-पाठः

मराठी ग्रंथ संग्रहालय, ठाणे. स्थळप्रत
अनुक्रम २८०९९ दि: ३/०३
क्रमांक १४८ नों. दि. २२/२/५

प्रकरणानि

१	प्रातःस्मरणम्	३
२	हरि-मीडे	१२
३	दक्षिणामूर्तिः	८
४	मनीषा-पंचकम्	५
५	ते धन्याः	७
६	कौपीन-भाग्यम्	३
७	शिवोऽहं शिवोऽहम्	६
८	शिवः केवलोऽहम्	६
९	प्रत्यगेवाहमस्मि	५
१०	तदेवाहमस्मि	८
११	स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा	१०
१२	शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम्	३
१३	ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि	१०
१४	उपदेश-पंचकम्	५
१५	परा पूजा	९
		१००

: १ : प्रातः-स्मरणम्

१ प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्म-तत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंस-गतिं तुरीयम्
यत् स्वप्न-जागर-सुषुप्तमवैति नित्यं
तद् ब्रह्म निष्कलमहं, न च भूत-संघः

२ प्रातर् भजामि मनसो वचसां अगम्यम्
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण
यत् नेति नेति वचनैर् निगमा अवोचुस्
तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम्

३ प्रातर् भजामि तमसः परमर्क-वर्णं
पूर्णं सनातन-पदं पुरुषोत्तमाख्यम्
यस्मिन्न् इदं जगदशेषमशेष-मूर्तौ
रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै

प्रातः-स्मरणम्]

: २ : हरिमीडे

१ स्तोष्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं
यस्मिन्न् एतत् संसृति-चक्रं भ्रमतीत्थम्
यस्मिन् दृष्टे नश्यति तत् संसृति-चक्रं
तं संसारध्वांत-विनाशं हरिमीडे

२ यस्यैकांशात् इत्थ मशेषं जग देतत्
प्रादुर्भूतं येन पिनद्धं पुन रित्थम्
येन व्याप्तं येन विबुद्धं सुख-दुःखैस्
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

३ सर्वज्ञो यो यश्च हि सर्वः सकलो यो
यश्चा नंदो ऽनंत-गुणो यो गुण-धामा
यश्चा व्यक्तो व्यक्त-समस्तः सदसद् यस्
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

४ आचार्येभ्यो लब्ध-सुसूक्ष्माच्युततत्त्वा
वैराग्येणा भ्यास-बलाच् चैव द्रढिम्ना
भक्त्यै काग्र-ध्यानपरा यं विदु रीशं
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

५ प्राणान् आयम्योमिति चित्तं हृदि रुध्वा
नान्यत् स्मृत्वा तत् पुन रत्रैव विलाप्य
क्षीणे चित्ते भा-दृशि रस्मीति विदुर् यं
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

६ यं ब्रह्माख्यं देव मनन्यं परिपूर्णं
हृत्स्थं भक्तैर् लभ्य मजं सूक्ष्म मतर्क्यम्
ध्यात्वा त्म-स्थं ब्रह्मविदो यं विदु रीशं
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

७ हित्वा हित्वा दृश्य मशेषं सविकल्पं
मत्वा शिष्टं भा-दृशिमात्रं गगनाभम्
त्यक्त्वा देहं यं प्रविश न्त्यच्युत-भक्तास्
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

८ ब्रह्मा विष्णू रुद्र-हुताशौ रवि-चन्द्रौ
इंद्रो वायुर् यज्ञ इतीत्थं परिकल्प्य
एकं सन्तं यं बहुधाऽऽहुर् मति-भेदात्
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

९ सत्यं ज्ञानं शुद्ध मनंतं व्यतिरिक्तं
शान्तं गूढं निष्कल मानंद मनन्यम्
इत्याहादौ यं वरुणोऽसौ भृगवेऽजं
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

१० श्रद्धा-भक्ति-ध्यान-शमाद्यैर् यतमानैर्
ज्ञातुं शक्यो देव इहैवाशु य ईशः
दुर्विज्ञेयो जन्म-शतैश् चापि विना तैस्
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

११ द्वंद्वैकत्वं यच्च मधुब्राह्मण-वाक्यैः
कृत्वा शक्रोपासन मासाद्य विभूत्या
यो ऽसौ सो ऽहं, सोऽस्म्यहमेवेति विदुर् यं
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि मीडे

१२ सत्तामात्रं केवल-विज्ञान-मजं सत्
सूक्ष्मं "तत् त्व-मसी"-त्यात्म-सुताय
साम्नां अंते प्राह पिता यं विभु-माद्यं
तं संसारध्वांत-विनाशं हरि-मीडे

[हरि-मीडे]

:३: दक्षिणामूर्तिः

१ विश्वं दर्पण-दृश्यमान-नगरी-तुल्यं निजान्तर्-गतं
पश्यन् आत्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया
यः साक्षात्कुरुते प्रबोध-समये स्वात्मान-मेवा-द्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

२ बीजस्या-न्तारिवांकुरो जगदिदं प्राङ्-निर्विकल्पं पुनर्
मायाकल्पित-देशकालकलनावैचित्र्य-चित्रीकृतम्
मायावीव विजृंभयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

३ यस्यैव स्फुरणं सदात्मक-मसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात् "तत् त्व-मसी"ति वेद-वचसा यो बोधय-त्याश्रितान्
यत्साक्षात्करणाद् भवेत् न पुनरावृत्तिर् भवांभोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

४ नानाच्छिद्रघटोदरस्थित-महादीप-प्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादि-करण-द्वारा बहिः स्पंदते
जानामीति तमेव भान्त मनुभात्येतत् समस्तं जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

५ राहुग्रस्त-दिवाकरेंदु-सदृशो माया-समाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो यो ऽभूत् सुषुप्तः पुमान्
प्राग् अस्वाप्स मिति प्रबोध-समये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

६ बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वा स्ववस्था स्वपि
व्यावृत्ता स्वनुवर्तमान महमि त्यंतःस्फुरन्तं सदा
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो भद्रया मुद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

७ विश्वं पश्यति कार्य-कारणतया स्व-स्वामि-संबंधतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृ-पुत्राद्यात्मना भेदतः
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो माया-परिभ्रामितस्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

८ भू रंभां स्यनलो ऽनिलो ऽबर महर्नाथो हिमांशुः पुमान्
इत्याभाति चराचरात्मक मिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्
नान्यत् किंचन विद्यते विमृशतां यस्मात् परस्माद् विभोस्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये

[दक्षिणामूर्ति-स्तोत्रम्]

:४: मनीषा-पंचकम्

१ जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु स्फुटतरा या संवि-दुज्जृंभते
या ब्रह्मादि-पिपीलिकान्त-तनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी
सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञापि यस्यास्ति चेत्
चांडालो ऽस्तु स तु द्विजो ऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम

२ ब्रह्मैवाह-मिदं जगच्च सकलं चिन्मात्र-विस्तारितं
सर्वं चैत-दविद्यया त्रिगुणया ऽशेषं मया कल्पितम्
इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले
चांडालो ऽस्तु स तु द्विजो ऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम

३ शश्वत् नश्वर-मेव विश्व-माखिलं निश्चित्य वाचा गुरोर्
नित्यं ब्रह्म निरंतरं विमृशता निर्व्याज-शान्तात्मना
भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके
प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपु-रित्येषा मनीषा मम

४ या तिर्यङ्-नर-देवताभि-रहमि-त्यंतःस्फुटा गृह्यते
यद्भासा हृदयाक्ष-देह-विषया भान्ति स्वतो ऽचेतनाः
तां भास्यैः पिहितार्क-मंडल-निभां स्फूर्तिं सदा भावयन्
योगी निर्वृत-मानसो हि गुरु-रित्येषा मनीषा मम

५ यत्सौख्याम्बुधि-लेश-लेशत इमे शक्रादयो निर्वृता
यत् चित्ते नितरां प्रशान्त-कलने लब्ध्वा मुनिर् निर्वृतः
यस्मिन् नित्य-सुखांबुधौ गलित-धीर् ब्रह्मैव न ब्रह्म-विद्
यः कश्चित् स सुरेंद्र-वंदितपदो नूनं मनीषा मम

[मनीषा-पंचकम्]

:५: ते धन्याः

१ तत् ज्ञानं, प्रशमकरं यदिंद्रियाणां
तत् ज्ञेयं, यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम्
ते धन्या, भुवि परमार्थ-निश्चितेहाः
शेषास्तु भ्रम-निलये परिभ्रमन्तः

२ आदौ विजित्य विषयान् मद-मोह-राग-
द्वेषादि-शत्रुगण-माहृत-योगराज्याः
वीत-स्पृहा विषयभोग-पदे विरक्ता
धन्याश् चरन्ति विजनेषु विरक्त-संगाः

३ त्यक्त्वा ममाहमिति बंधकरे पदे द्वे
मानावमान-सदृशाः सम-दर्शिनश्च
कर्तार-मन्य-मवगम्य तदर्पितानि
कुर्वन्ति कर्म-परिपाक-फलानि धन्याः

४ त्यक्त्वैषणात्रय मवेक्षित-मोक्षमार्गा
भैक्षामृतेन परिकल्पित-देहयात्राः
ज्योतिः परात्परतरं परमात्म-संज्ञं
धन्या द्विजा रहसि हृद्य वलोकयंति

५ नासत् न सत् न सदसत् न महत् न चाणु
न स्त्री पुमान् न च नपुसक मेकबीजं
यैर् ब्रह्म तत् समनुपासित मेकचित्तैर्
धन्या विरेजु रितरे भवपाश-बद्धाः

६ अज्ञानपंक-परिमग्न मेपेत-सारं
दुःखालयं मरण-जन्म-जरावसक्तम्
संसार-बंधन मनित्य मवेक्ष्य धन्या
ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति

७ शान्तै रनन्य-मतिभिर् मधुर-स्वभावैर्
एकत्व-निश्चितमनोभि रपेत-मोहैः
साकं वनेषु विदितात्मपद-स्वरूपं
तद्वस्तु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः

[धन्याष्टकम्]

:६: कौपीन-भाग्यम्

१ वेदान्त-वाक्येषु सदा रमन्तः, भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः
विशोक-मंतःकरणे रमन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः

२ देहादि-भावं परिवर्जयन्तः, आत्मान-मात्म-न्यवलोकयन्तः
नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः

३ स्वानन्द-भावे परितुष्टिमन्तः, संशांतसर्वेन्द्रिय-तुष्टिमन्तः
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः

[कौपीन-पंचकम्]

:७: शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

१ मनो-बुद्ध्यहंकार-चित्तानि नाहं
न च श्रोत्र-जिह्वे न च घ्राण-नेत्रे
न च व्योम भूमिर् न तेजो न वायुश्
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

२ न च प्राणसंज्ञा न पंचानिला मे
न वा सप्तधातुर् न वा पंचकोशः
न वाक् पाणिपादौ न चोपस्थ-पायू
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

३ न मे द्वेष-रागौ न मे लोभ-मोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षश्
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

४ न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मंत्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

५ न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म
न बंधुर् न मित्रं गुरुर् नैव शिष्यश्
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

६ अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुर् व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि
सदा मे समत्वं न मुक्तिर् न बंधश्
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

[आत्म-षट्कम्]

: ८ : शिवः केवलो ऽहम्

१ न भूमिर् न तोयं न तेजो न वायुर्
न खं नेंद्रियं वा न तेषां समूहः
अनैकांतिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

२ न चोर्ध्वं न चाधो न चांतर् न बाह्यम्
न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वा परा दिक्
वियद्व्यापकत्वात् अखंडैकरूपस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

३ न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम्
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

४ न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा
न च त्वं न चाहं न चायं प्रपंचः
स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णुस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

५ न जाग्रत् न मे स्वप्नको का सुषुप्तिर्
न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा
अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणां तुरीयस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

६ अपि व्यापकत्वात् हि तत्त्वप्रयोगात्
स्वतःसिद्धभावात् अनन्याश्रयत्वात्
जगत् तुच्छ-मेतत् समस्तं तदन्यत्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

[दश-श्लोकी]

:९: प्रत्यगेवा-हमस्मि

१ नाहं देहो नाप्यसुर् नाक्षवर्गो
नाहंकारो नो मनो नापि बुद्धिः
अंतस् तेषां चापि तद्-विक्रियाणां
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवा-हमस्मि

२ वाचः साक्षी प्राण-वृत्तेश्च साक्षी
बुद्धेः साक्षी बुद्धि-वृत्तेश्च साक्षी
चक्षुः श्रोत्रादींद्रियाणां च साक्षी
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाऽहमस्मि

३ नास्म्याऽगंता नापि गंता न हंता
नाहं कर्ता न प्रयोक्ता न वक्ता
नाहं भोक्ता नो सुखी नैव दुःखी
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाऽहमस्मि

४ नाहं योगी नो वियोगी न रागी
नाहं क्रोधी नैव कामी न लोभी
नाहं बद्धो नापि युक्तो न मुक्तः
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाऽहमस्मि

५ नांतःप्रज्ञो नो बहिःप्रज्ञको वा
नैव प्रज्ञो नापि चाप्रज्ञ एषः
नाहं श्रोता नापि मंता न बोद्धा
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाऽहमस्मि

[सर्ववेदांत-सिद्धांत-सार-संग्रहः]

३ न मे द्वेष-रागौ न मे लोभ-मोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षश्
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

४ न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मंत्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

५ न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म
न बंधुर् न मित्रं गुरुर् नैव शिष्यश्
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

६ अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुर् व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि
सदा मे समत्वं न मुक्तिर् न बंधश्
चिदानंदरूपः शिवो ऽहं शिवो ऽहम्

[आत्म-षट्कम्]

: ८ : शिवः केवलो ऽहम्

१ न भूमिर् न तोयं न तेजो न वायुर्
न खं नेंद्रियं वा न तेषां समूहः
अनैकांतिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

२ न चोर्ध्वं न चाधो न चांतर् न बाह्यम्
न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वा परा दिक्
वियद्व्यापकत्वात् अखंडैकरूपस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

३ न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम्
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

४ न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा
न च त्वं न चाहं न चायं प्रपंचः
स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णुस्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

५ न जाग्रत् न मे स्वप्नको का सुषुप्तिर्
न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा
अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणां तुरीयम्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

६ अपि व्यापकत्वात् हि तत्त्वप्रयोगात्
स्वतःसिद्धभावात् अनन्याश्रयत्वात्
जगत् तुच्छ-मेतत् समस्तं तदन्यत्
तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलो ऽहम्

[दश-श्लोकी]

:९: प्रत्यगेवा-हमस्मि

१ नाहं देहो नाप्यसुर् नाक्षवर्गो
नाहंकारो नो मनो नापि बुद्धिः
अंतस् तेषां चापि तद्-विक्रियाणां
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवा-हमस्मि

२ वाचः साक्षी प्राण-वृत्तेश्च साक्षी
बुद्धेः साक्षी बुद्धि-वृत्तेश्च साक्षी
चक्षुः श्रोत्रादींद्रियाणां च साक्षी
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाऽहमस्मि

३ नास्म्याऽगंता नापि गंता न हंता
नाहं कर्ता न प्रयोक्ता न वक्ता
नाहं भोक्ता नो सुखी नैव दुःखी
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाऽहमस्मि

४ नाहं योगी नो वियोगी न रागी
नाहं क्रोधी नैव कामी न लोभी
नाहं बद्धो नापि युक्तो न मुक्तः
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाऽहमस्मि

५ नांतःप्रज्ञो नो बहिःप्रज्ञको वा
नैव प्रज्ञो नापि चाप्रज्ञ एषः
नाहं श्रोता नापि मंता न बोद्धा
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाऽहमस्मि

[सर्ववेदांत-सिद्धांत-सार-संग्रहः]

ःः१०ः तदेवाऽहमस्मि

१ तपो-यज्ञ-दानादिभिः शुद्ध-बुद्धिर्
विरक्तो नृपादौ पदे तुच्छ-बुद्ध्या
परित्यज्य सर्वं यदाप्नोति तत्त्वं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाऽहमस्मि

२ दयालुं गुरुं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं
समाराध्य भक्त्या विचार्य स्वरूपम्
यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान्
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाऽहमस्मि

३ यदानंदरूपं प्रकाश-स्वरूपं
निरस्त-प्रपंचं परिच्छेद-शून्यम्
अहं ब्रह्मवृत्त्येक-गम्यं तुरीयं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाऽहमस्मि

४ यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं
विनष्टं च सद्यो यदात्म-प्रबोधे
मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाऽहमस्मि

५ निषेधे कृते नेति-नेतीति वाक्यैः
समाधि-स्थितानां यदाभाति पूर्णम्
अवस्थात्रयातीत॑मद्वैत॑मेकं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवा॑हमस्मि

६ यदानंदलेशैः समानन्दि विश्वं
यदाभाति सत्त्वे सदाभाति सर्वम्
यदालोचिते हेय॑मन्यत् समस्तं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवा॑हमस्मि

७ अनंतं विभुं सर्वयोनिं निरीहं
शिवं संग-हीनं यदोंकार-गम्यम्
निराकार॑मत्युज्ज्वलं मृत्यु-हीनं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवा॑हमस्मि

८ यदानंद-सिद्धौ निमग्नः पुमान् स्यात्
अविद्या-विलासः समस्त-प्रपंचः
तदा न स्फुर॑त्यद्भुतं यन्निमित्तं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवा॑हमस्मि

[विज्ञान-नौका]

:११: हस्तामलकः

१ कस् त्वं शिशो, कस्य, कुतो ऽसि गंता,
किं नाम ते, त्वं कुत आगतो ऽसि ?
एतत् मयोक्तं वद चार्भक त्वं
मत्प्रीतये प्रीति-विवर्धनो ऽसि

२ नाहं मनुष्यो न च देव-यक्षौ
न ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो
भिक्षुर् न चाहं निजबोधरूपः

३ निमित्तं मनश् चक्षुरादि-प्रवृत्तौ
निरस्ताखिलोपाधि राकाश-कल्पः
रविर् लोकचेष्टा-निमित्तं यथा यः
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

४ य मग्न्युष्णवत् नित्यबोधस्वरूपं
मनश्चक्षुरादी न्यबोधात्मकानि
प्रवर्तंत आश्रित्य निष्कंप मेकं
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

५ मुखाभासको दर्पणे दृश्यमानो
मुखत्वात् पृथक्त्वेन नैवास्ति वस्तु
चिदाभासको धीषु जीवो ऽपि तद्वत्
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

६ यथादर्पणाभाव आभास-हानौ
मुखं विद्यते कल्पनाहीन मेकं
तथा धी-वियोगे निराभासको यः
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

७ मनश्चक्षुरादेर् वियुक्तः स्वयं यो
मनश्चक्षुरादेर् मनश्चक्षुरादिः
मनश्चक्षुरादेर् अगम्यस्वरूपः
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

८ य एको विभाति स्वतः शुद्धचेताः
प्रकाशस्वरूपो ऽपि नानेव धीषु
शरावोदकस्थो यथा भानु रेकः
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

९ घन-च्छन्नदृष्टिर् घन-च्छन्न मर्कं
यथा निष्प्रभं मन्यते चातिमूढः
तथा बद्धवद् भाति यो मूढदृष्टेः
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

१० समस्तेषु वस्तु ष्वनुस्यूत मेकं
समस्तानि वस्तूनि यत् न स्पृशंति
वियद्वत् सदाशुद्ध मच्छस्वरूपं
स नित्योपलब्धिस्वरूपो ऽहमात्मा

[बृहत्-स्तोत्ररत्नाकरतः]

:१२: तत्त्वमसि त्वम्

१ ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय-विहीनं
ज्ञातुरभिन्नं ज्ञानमखंडम्
ज्ञेयाज्ञेयत्वादि-विमुक्तं
शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम्

२ अंतःप्रज्ञत्वादि-विकल्पैर्
अस्पृष्टं यत् तत् शिवमात्रम्
सत्तामात्रं समरसमेकं
शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम्

३ सर्वाकारं सर्वमसर्वं
सर्वनिषेधावधिभूतं यत्
सत्यं शाश्वतमेकमनंतं
शुद्धं बुद्धं तत्त्वमसि त्वम्

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

:१३: यद् ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

१ जाति-नीति-कुल-गोत्र-दूरगं, नाम-रूप-गुण-दोष-वर्जितम्
देश-काल-विषयातिवर्ति यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

२ यत् परं सकलवागगोचरं, गोचरं विमलबोध-चक्षुषः
शुद्धचिद्घन मनादि वस्तु यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

३ षड्भि रूर्मिभि रयोगि योगिहृद्,-भावितं न करणैर् विभावितम्
बुद्ध्यवेद्य मनवद्यभूति यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

४ भ्रांतिकल्पित-जगत्कलाश्रयं, स्वाश्रयं च सदसद्विलक्षणम्
निष्कलं निरुपमान मृद्धिमद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

५ जन्म-वृद्धि-परिणत्यपक्षय,-व्याधि-नाशन-विहीन मव्ययम्
विश्व-सृष्ट्यवन-घात-कारणं, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

६ अस्तभेद मनपास्त-लक्षणं, निस्तरंग-जलराशि-निश्चलम्
नित्यमुक्त मविभक्तमूर्ति यद्, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

७ एकमेव सद नेक-कारणं कारणांतर-निरासकारणम्
कार्यकारण-विलक्षणं स्वयं, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

८ निर्विकल्पक मनल्प मक्षरं, यत् क्षराक्षर-विलक्षणं परम्
नित्य मव्ययसुखं निरंजनं, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

९ यद् विभाति सदनेकधा भ्रमात्, नाम-रूप-गुण-विक्रियात्मना
हेमवत् स्वय मविक्रियं सदा, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

१० यत् चकास्त्यनपरं परात्परं, प्रत्य गेकरस मात्म-लक्षणम्
सत्यचित्सुख मनंत मव्ययं, ब्रह्म तत् त्वमसि भावयात्मनि

[विवेक-चूडामणिः]

: १४ : उपदेश-पंचकम्

१ वेदो नित्य मधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
तेने शस्य विधीयता मपचितिः काम्ये मतिस् त्यज्यताम्
पापौघः परिधूयतां भव-सुखे दोषो ऽनुसंधीयतां
आत्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम्

२ संगः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर् दृढा धीयतां
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु संत्यज्यताम्
सद्विद्वान् उपसृप्यतां प्रतिदिनं तत्पादुके सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षर मर्थ्यतां श्रुति-शिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम्

३ वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुति-शिरःपक्षः समाश्रीयतां
दुस्तर्कात् सुविरम्यतां श्रुतिमतस् तर्को ऽनुसंधीयताम्
ब्रह्मास्मीति विभाव्यतां अहरहर् गर्वः परित्यज्यतां
देहे ऽहं-मति रुज्झ्यतां बुधजनैर् वादः परित्यज्यताम्

अनुक्रम २८०९९ .. दि: ...

४ क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात् प्राप्तेन संतुष्यताम्
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यतां
औदासीन्य-मभीप्स्यतां जन-कृपानैष्ठुर्य-मुत्सृज्यताम्

५ एकान्ते सुख-मास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चिति-बलात् नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां
प्रारब्धं त्विह भुज्यतां अथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम्

[उपदेश-पंचकम्]

:१५: परा पूजा

१ अखंडे सच्चिदानंदे निर्विकल्पैकरूपिणि
स्थिते ऽद्वितीयभावे ऽस्मिन् कथं पूजा विधीयते

२ पूर्णस्या-वाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्
स्वच्छस्य पाद्य-मर्घ्यं च शुद्धस्या-चमनं कुतः

३ निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस् तस्यो-पवीतकम्

४ निर्लेपस्य कुतो गंधः पुष्पं निर्वासनस्य च
निर्विशेषस्य का भूषा को ऽलंकारो निराकृतेः

५ निरंजनस्य किं धूपैर् दीपैर् वा सर्वसाक्षिणः
निजानंदैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेत् इह

६ प्रदक्षिणा अनंतस्य अद्वयस्य कुतो नतिः
वेदवाक्यैर् अवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते

७ स्वयं प्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः
अंतर्बहिश्च पूर्णस्य कथं उद्वासनं भवेत्

८ एवमेव परा पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा
एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः

९ आत्मा त्वं, गिरिजा मतिः, सहचराः प्राणाः, शरीरं गृहं,
पूजा ते विविधोपभोग-रचना, निद्रा समाधि-स्थितिः,
संचारस्तु पदोः प्रदक्षिणाविधिः, स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्

[परा पूजा]

वाक्य-विचारः

प्रकरणानि

१	लघु-वाक्यवृत्तिः		१८
२	वाक्य-सुधा		४५
	१ चिति-लक्षणम्	१९	
	२ समाधयः	११	
	३ जीव-भेदाः	१५	
३	वाक्य-वृत्तिः		३७
	१ त्वं-पदार्थः	१४	
	२ तत्-पदार्थः	८	
	३ वाक्यार्थः	१०	
	४ अभ्यासावधिः	५	
			१००

:१: लघु-वाक्यवृत्तिः

१ स्थूलो मांसमयो देहो सूक्ष्मः स्याद् वासनामयः
ज्ञानकर्मेन्द्रियैः सार्धं धी-प्राणौ तच्छरीर-गौ

२ अज्ञानं कारणं साक्षी बोधस् तेषां विभासकः
बोधाभासो बुद्धिगतः कर्ता स्यात् पुण्य-पापयोः

३ स एव संसरत् कर्म-वशात् लोक-द्वये सदा
बोधाभासात् शुद्धबोधं विविच्याद् अति-यत्नतः

४ जागर-स्वप्नयो रेव बोधाभास-विडंबना
सुप्तौ तु तल्लये बोधः शुद्धो जाडचं प्रकाशयेत्

५ जागरे ऽपि धियस् तूष्णींभावः शुद्धेन भास्यते
धी-व्यापाराश्च चिद्भास्याश् चिदाभासेन संयुताः

६ वह्नितप्त-जलं ताप-युक्तं देहस्य तापकम्
चिद्भास्या धीस् तदाभासयुक्ताऽन्यं भासयेत् तथा

७ रूपादौ गुणदोषादि-विकल्पा बुद्धि-गाः क्रियाः
ताः क्रिया विषयैः सार्धं भासयन्ती चितिर् मता

८ रूपात् च गुण-दोषाभ्यां विविक्ता केवला चितिः
सैवानुवर्तते रूप-रसादीनां विकल्पने

९ क्षणे क्षणे ऽन्यथाभूता धी-विकल्पाश् चितिर् न तु
मुक्तासु सूत्रवद् बुद्धि-विकल्पेषु चितिस् तथा

१० मुक्ताभिरावृतं सूत्रं मुक्तयोर् मध्य ईक्ष्यते
तथा वृत्ति-विकल्पैश् चित् स्पष्टा मध्ये विकल्पयोः

११ नष्टे पूर्व-विकल्पे तु यावद् अन्यस्य नोदयः
निर्विकल्पक-चैतन्यं स्पष्टं तावद् विभासते

१२ एक-द्वि-त्रि-क्षणेष्वेवं विकल्पस्य निरोधनम्
क्रमेणाभ्यस्यतां यत्नाद् ब्रह्मानुभव-कांक्षिभिः

१३ सविकल्पक-जीवो ऽयं ब्रह्म तन्-निर्विकल्पकम्
'अहं ब्रह्मे'ति वाक्येन सो ऽयं अर्थो ऽभिधीयते

१४ सविकल्पक-चिद् यो ऽहं ब्रह्मैकं निर्विकल्पकम्
स्वतः-सिद्धा विकल्पास् ते निरोद्धव्याः प्रयत्नतः

१५ शक्यः सर्व-निरोधेन समाधिर् योगिनां प्रियः
तदशक्तौ क्षणं रुद्ध्वा श्रद्धालुर् ब्रह्मतात्मनः (?)

१६ श्रद्धालुर् ब्रह्मतां स्वस्य चिंतयेद् बुद्धि-वृत्तिभिः
वाक्य-वृत्त्या यथाशक्ति ज्ञात्वा-द्धा-भ्यस्यतां सदा

१७ तच्-चिंतनं तत्-कथनं अन्योन्यं तत्-प्रबोधनम्
एतद् एकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर् बुधाः

१८ देहात्म-धीवद् ब्रह्मात्म-धी-दार्ढ्ये कृतकृत्यता
यदा तदा-यं म्रियतां मुक्तो ऽसौ नात्र संशयः

[लघु-वाक्यवृत्तिः]

:२: वाक्य-सुधा

१ चिति-लक्षणम्

१ रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्-दृश्यं दृक् तु मानसम्
दृश्या धी-वृत्तयः साक्षी दृगेव तु न दृश्यते

२ नीलपीत-स्थूलसूक्ष्म-ह्रस्वदीर्घादि-भेदतः
नानाविधानि रूपाणि पश्येत् लोचन-मेकधा

३ आंध्य-मांद्य-पटुत्वेषु नेत्र-धर्मेषु चैकधा
संकल्पयेत् मनः-श्रोत्र-त्वगादौ योज्यतां इदम्

४ कामः संकल्प-संदेहौ श्रद्धाऽश्रद्धे धृतीतरे
ह्रीर् धीर् भी-रित्येवमादीन् भासयत्ये-कधा चितिः

५ नोदेति नास्तं एत्येषा न वृद्धिं याति न क्षयम्
स्वयं विभात्यथान्यानि भासयेत् साधनं विना

६ चिच्छायाऽऽवेश-तो बुद्धौ भानं धीस् तु द्विधा स्थिता
एकाहंकृतिरन्या स्याद् अंतःकरणरूपिणी

७ छायाहंकारयोरैक्यं तप्तायःपिंडवत् मतम्
तदहंकार-तादात्म्यात् देहश् चेतनतां अगात्

८ अहंकारस्य तादात्म्यं चिच्छाया-देह-साक्षिभिः
सह-जं कर्म-जं भ्रान्ति-जन्यं च त्रिविधं क्रमात्

९ संबंधिनोः सतोर् नास्ति निवृत्तिः सहजस्य तु
कर्म-क्षयात् प्रबोधात् च निवर्तेते क्रमात् उभे

१० अहंकार-लये सुप्तौ भवेत् देहो ऽप्यचेतनः
अहंकार-विकासार्धः स्वप्नः, सर्वस् तु जागरः

११ अंतःकरण-वृत्तिश् च चितिच्छायैक्यमागता
वासनाः कल्पयेत् स्वप्ने, बोधे ऽक्षैर् विषयान् बहिः

१२ मनोऽहंकृत्युपादानं लिंगं एकं जडात्मकम्
अवस्था-त्रयमन्वेति जायते म्रियते तथा

१३ शक्ति-द्वयं हि मायाया विक्षेपावृतिरूपकम्
विक्षेप-शक्तिर् लिंगादि ब्रह्मांडान्तं जगत् सृजेत्

१४ सृष्टिर् नाम ब्रह्म-रूपे सच्चिदानंद-वस्तुनि
अब्धौ फेनादिवत् सर्व-नामरूप-प्रसारणा

१५ अंतर् दृग्-दृश्ययोर् भेदं बहिश्च ब्रह्म-सर्गयोः
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम्

१६ साक्षिणः पुरतो भातं लिंगं देहेन संयुतम्
चितिच्छाया-समावेशात् जीवः स्याद् व्यावहारिकः

१७ अस्य जीवत्व-मारोपात् साक्षिण्य-प्यवभासते
आवृतौ तु विनष्टायां भेदे भाते ऽपयाति तत्

१८ तथा सर्ग-ब्रह्मणोश् च भेद-मावृत्य तिष्ठति
या शक्तिस् तद्वशात् ब्रह्म विकृतत्वेन भासते

१९ अत्रा-प्यावृति-नाशेन विभाति ब्रह्म-सर्गयोः
भेदस् तयोर् विकारः स्यात् सर्गे, न ब्रह्मणि क्वचित्

२ समाधयः

१ अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश-पंचकम्
आद्य-त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्

२ ख-वाय्वग्नि-जलोर्वीषु देव-तिर्यङ्-नरादिषु
अभिन्नाः सच्चिदानंदा भिद्येते रूप-नामनी

३ उपेक्ष्य नाम-रूपे द्वे सच्चिदानंद-तत्परः
समाधिं सर्वदा कुर्यात् हृदये वाथवा बहिः

४ स-विकल्पो निर्विकल्पः समाधिर् द्विविधो हृदि
दृश्य-शब्दानुवेधेन स-विकल्पः पुनर् द्विधा

५ कामाद्याश् चित्त-गा दृश्यास् तत्-साक्षित्वेन चेतनम्
ध्यायेत्, दृश्यानुविद्धो ऽयं समाधिः स-विकल्पकः

६ अ-संगः सच्चिदानंदः स्व-प्रभो द्वैत-वर्जितः
अस्मीति-शब्दविद्धो ऽयं समाधिः स-विकल्पकः

७ स्वानुभूति-रसावेशात् दृश्य-शब्दान् उपेक्षितुः
निर्विकल्पः समाधिः स्यात् निवातस्थित-दीपवत्

८ हृदीव बाह्य-देशे ऽपि यस्मिन् कस्मिंश्च वस्तुनि
समाधिर् आद्यः सन्मात्रात् नामरूप-पृथक्कृतिः

९ अखंडैकरसं वस्तु सच्चिदानंद-लक्षणम्
इत्यविच्छिन्न-चिंतेयं समाधिर् मध्यमो भवेत्

१० स्तब्धीभावो रसास्वादात् तृतीयः पूर्ववत् मतः
एतैः समाधिभिः षड्भिर् नयेत् कालं निरंतरम्

११ देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः

३ जीव-भेदाः

१ अवच्छिन्नश्, चिदाभासस्, तृतीयः स्वप्न-कल्पितः
विज्ञेयस् त्रिविधो जीवस् तत्राद्यः पारमार्थिकः

२ अवच्छेदः कल्पितः स्याद्, अवच्छेद्यं तु वास्तवम्
तस्मिन् जीवत्व-मारोपाद् ब्रह्मत्वं तु स्वभावतः

३ अवच्छिन्नस्य जीवस्य पूर्णेन ब्रह्मणै-कताम्
'तत् त्वं अस्यादि'-वाक्यानि जगुर् नेतर-जीवयोः

४ ब्रह्मण्य-वस्थिता माया विक्षेपावृति-रूपिणी
आवृत्याऽखंडतां तस्मिन् जगज्-जीवौ प्रकल्पयेत्

५ जीवो धीस्थ-चिदाभासो भवेद् भोक्ता हि कर्मकृत्
भोज्यरूपं इदं सर्वं जगत् स्याद् भूत-भौतिकम्

६ अनादिकालं आरभ्य मोक्षात् पूर्वं इदं द्वयम्
व्यवहारे स्थितं तस्मात् उभयं व्यावहारिकम्

७ चिदाभास-स्थिता निद्रा विक्षेपावृति-रूपिणी
आवृत्य जीव-जगती पूर्वे नूत्नं तु कल्पयेत्

८ प्रतीति-काले एवैते स्थितत्वात् प्रातिभासिके
नहि स्वप्न-प्रबुद्धस्य पुनः स्वप्ने स्थितिस् तयोः

९ प्रातिभासिक-जीवो यस् तज्-जगत् प्रातिभासिकम्
वास्तवं मन्यते ऽन्यस् तु मिथ्येति व्यावहारिकः

१० व्यावहारिक-जीवो यस् तज्-जगद् व्यावहारिकम्
सत्यं प्रत्येति, मिथ्येति मन्यते पारमार्थिकः

११ पारमार्थिक-जीवस् तु ब्रह्मैक्यं पारमार्थिकम्
प्रत्येति, वीक्षते नान्यद्, वीक्षते त्वनृतात्मना

१२ माधुर्य-द्रव-शैत्यानि नीर-धर्मास् तरंगके
अनुगम्याथ तन्-निष्ठे फेने ऽप्यनुगता यथा

१३ साक्षि-स्थाः सच्चिदानंदाः संबंधा व्यावहारिके
तद्द्वारेणानुगच्छन्ति तथैव प्रातिभासिके

१४ लये फेनस्य तद्-धर्मा द्रवाद्याः स्युस् तरंगके
तस्यापि विलये नीरे तिष्ठन्त्येते यथा पुरा

१५ प्रातिभासिक-जीवस्य लये स्युर् व्यावहारिके
तल्-लये सच्चिदानंदाः पर्यवस्यन्ति साक्षिणि

:३: वाक्य-वृत्तिः

१ त्वंपदार्थः

१ 'तत् त्वं असा'-दि-वाक्योत्थं यत् जीव-परमात्मनोः
तादात्म्य-विषयं ज्ञानं तदिदं मुक्ति-साधनम्

२ सत्यानंद-स्वरूपं धी-साक्षिणं ज्ञान-विग्रहम्
चिंतया ऽऽत्मतया नित्यं त्यक्त्वा देहादि-गां धियम्

३ घट-द्रष्टा घटाद् भिन्नः सर्वथा न घटो यथा
देह-द्रष्टा तथा देहो नाहं इत्य्-अवधारय

४ एवं इंद्रिय-दृक् नाहं इंद्रियाणीति निश्चिनु
मनो बुद्धिस् तथा प्राणो नाहं इत्य्-अवधारय

५ संघातो ऽपि तथा नाहं इति दृश्य-विलक्षणम्
द्रष्टारं अनुमानेन निपुणं संप्रधारय

६ देहेंद्रियादयो भावा हानादि-व्यापृति-क्षमाः
यस्य संनिधिमात्रेणे सो ऽहं इत्य्-अवधारय

७ अनापन्न-विकारः सन् अयस्कांतवदेव यः
बुद्ध्यादीन् चालयेत् प्रत्यक् सो ऽहं इत्य्-अवधारय

८ अजडात्मवत् आभान्ति यत्-सांनिध्यात् जडा अपि
देहेंद्रिय-मनः-प्राणाः सो ऽहं इत्य् अवधारय

९ अगमत् मे मनो ऽन्यत्र सांप्रतं च स्थिरीकृतम्
एवं यो वेद धी-वृत्तिं सो ऽहं इत्य् अवधारय

१० स्वप्न-जागरिते सुप्तिं भावाभावौ धियां तथा
यो वेत्त्य् अविक्रियः साक्षात् सो ऽहं इत्य् अवधारय

११ पुत्र-वित्तादयो भावा यस्य शेषतया प्रियाः
द्रष्टा सर्व-प्रियतमः सो ऽहं इत्य् अवधारय

१२ पर-प्रेमास्पदतया मा न भूवं अहं सदा
भूयासं इति यो द्रष्टा सो ऽहं इत्य् अवधारय

१३ यः साक्षि-लक्षणो बोधस् त्वं-पदार्थः स उच्यते
साक्षित्वं अपि बोद्धृत्वं अविकारितया ऽऽत्मनः

१४ देहेन्द्रिय-मनः-प्राणाहंकृतिभ्यो विलक्षणः
प्रोज्झिताशेष-षड्भाव-विकारस् त्वंपदाभिधः

२ तत्पदार्थः

१ त्वमर्थं एवं निश्चित्य तदर्थं चिंतयेत् पुनः
अतद्-व्यावृत्तिरूपेण साक्षाद् विधि-मुखेन च

२ निरस्ताशेष-संसार-दोषो ऽस्थूलादि-लक्षणः
अदृश्यत्वादि-गुणकः पराकृत-तमोमलः

३ निरस्तातिशयानंदः सत्यः प्रज्ञान-विग्रहः
सत्ता-स्वलक्षणः पूर्णः परमात्मेति गीयते

४ सर्वज्ञत्वं परेशत्वं तथा संपूर्णशक्तिता
वेदैः समर्थ्यते यस्य तद् ब्रह्मेत्यवधारय

५ यज्ज्ञानात् सर्व-विज्ञानं श्रुतिषु प्रतिपादितम्
मृदाद्यनेक-दृष्टान्तैस् तद् ब्रह्मेत्यवधारय

६ विजिज्ञास्यतया यच्च वेदान्तेषु मुमुक्षुभिः
समर्थ्यते ऽति-यत्नेन तद् ब्रह्मेत्यवधारय

७ जीवात्मना प्रवेशश्च नियन्तृत्वं च तान् प्रति
श्रूयते यस्य वेदेषु तद् ब्रह्मेत्यवधारय

८ कर्मणां फल-दातृत्वं यस्यैव श्रूयते श्रुतौ
जीवानां हेतु-कर्तृत्वं तद् ब्रह्मे त्यवधारय

३ वाक्यार्थः

१ तत्-त्वं-पदार्थौ निर्णीतौ वाक्यार्थश् चिंत्यते ऽधुना
तादात्म्यं अत्र वाक्यार्थस् तयोरेव पदार्थयोः

२ संसर्गो वा विशिष्टो वा वाक्यार्थो नात्र संमतः
अखंडैकरसत्वेन वाक्यार्थो विदुषां मतः

३ प्रत्यग्बोधो य आभाति सो ऽद्वयानंद-लक्षणः
अद्वयानंदरूपश्च प्रत्यग्बोधैकलक्षणः

४ इत्थं अन्योन्य-तादात्म्य-प्रतिपत्तिर् यदा भवेत्
अब्रह्मत्वं त्वमर्थस्य व्यावर्तेत तदैव हि

५ 'तत् त्वं अस्या'-दि-वाक्यं च तादात्म्य-प्रतिपादने
लक्ष्यौ तत्-त्वंपदार्थौ द्वौ उपादाय प्रवर्तते

६ आलंबनतया भाति यो ऽस्मत्प्रत्यय-शब्दयोः
अंतःकरण-संभिन्न-बोधः स त्वं-पदाभिधः

७ मायोपाधिर् जगद्-योनिः सर्वज्ञत्वादि-लक्षणः
पारोक्ष्य-शबलः सत्याद्यात्मकस् तत्पदाभिधः

८ प्रत्यक्परोक्षतैकस्य सद्वितीयत्व-पूर्णता
विरुध्यते यतस् तस्मात् लक्षणा संप्रवर्तते

९ मानान्तर-विरोधे तु मुख्यार्थस्यापरिग्रहे
मुख्यार्थेनाऽविनाभूते प्रतीतिर् लक्षणोच्यते

१० 'तत् त्वं अस्या'दि-वाक्येषु लक्षणा भाग-लक्षणा
'सो ऽयं' इत्यादि-वाक्यस्थ-पदयोरिव नापरा

४ अभ्यासावधिः

१ 'अहं ब्रह्मे'ति वाक्यार्थ-बोधो यावद् दृढीभवेत्
शमादि-सहितस् तावद् अभ्यस्येत् श्रवणादिकम्

२ श्रुत्याचार्य-प्रसादेन दृढो बोधो यदा भवेत्
निरस्ताशेष-संसार-निदानः पुरुषस् तदा

३ विशीर्ण-कार्यकरणो भूतसूक्ष्मैरनावृतः
विमुक्त-कर्मनिगडः सद्य एव विमुच्यते

४ प्रारब्ध-कर्म-वेगेण जीवन्मुक्तो यदा भवेत्
कंचित् कालं अनारब्ध-कर्म-बंधस्य संक्षये

५ निरस्तातिशयानंदं वैष्णवं परमं पदम्
पुनरावृत्ति-रहितं कैवल्यं प्रतिपद्यते

बोध-सोपानः

प्रकरणानि

१	आत्म-बोधः	२५
२	बंधमोक्ष-कथा	१२
३	अद्वैत-मर्यादा	१
४	वेदांत-डिंडिमः	४
५	श्रुति-तात्पर्यम्	१२
६	अद्वैतोपमानम्	१२
७	ब्रह्मानुचिंतनम्	१२
८	उन्मनी	११
९	मह्यं नमः	८
१०	मौनं आश्रये	३
		१००

: १ : आत्म-बोधः

१ तपोभिः क्षीण-पापानां शांतानां वीत-रागिणाम्
मुमुक्षूणां अपेक्ष्यो ऽयं आत्म-बोधो विधीयते

२ बोधो ऽन्य-साधनेभ्यो हि साक्षात् मोक्षैक-साधनम्
पाकस्य वह्निवत्, ज्ञानं-विना मोक्षो न सिध्यति

३ अविरोधितया कर्म नाविद्यां विनिवर्तयेत्
विद्या ऽविद्यां निहन्त्येव तेजस् तिमिर-संघवत्

४ अविच्छिन्न इवा ज्ञानात् तन्नाशे सति केवलः
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायें ऽशुमान् इव

५ अज्ञान-कलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद् विनिर्मलम्
कृत्वा, ज्ञानं स्वयं नश्येत् जलं कतक-रेणुवत्

६ संसारः स्वप्न-तुल्यो हि रागद्वेषादि-संकुलः
स्वकाले सत्यवद् भाति प्रबोधे सत्य सद् भवेत्

७ सच्चिदात्म न्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत्

८ यथाऽऽकाशो हृषीकेशो नानोपाधि-गतो विभुः
तद्भेदाद् भिन्नवद् भाति तन्नाशे केवलो भवेत्

९ नानोपाधि-वशादेव जाति-नामाश्रमादयः
आत्मन्याऽऽरोपितास् तोये रस-वर्णादि-भेदवत्

१० पंचकोशादि-योगेन तत्तन्मय इव स्थितः
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादि-योगेन स्फटिको यथा

११ वपुस्-तुषादिभिः कोशैर् युक्तं युक्त्यवघाततः
आत्मानं आन्तरं शुद्धं विविंच्यात् तंडुलं यथा

१२ सदा सर्व-गतोऽप्यात्मा न सर्वत्राऽवभासते
बुद्धौ एवाऽवभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिंबवत्

१३ देहेंद्रिय-मनोबुद्धि-प्रकृतिभ्यो विलक्षणम्
तद्वृत्ति-साक्षिणं विद्यात् आत्मानं राजवत् सदा

१४ व्यापृतेष्विंद्रियेष्वात्मा व्यापारीवाऽविवेकिनाम्
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्न् इव यथा शशी

१५ आत्म-चैतन्यमाश्रित्य देहेंद्रिय-मनोधियः
स्व-क्रियार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जनाः

मराठी ... ठाणे.
अनुक्रमांक: आत्म-बोधः वि:
२८०२२ ...

१६ देहेंद्रिय-गुणान् कर्माण्य मले सच्चिदात्मनि
अध्यस्यन्त्य-विवेकेन गगने नीलतादिवत्

१७ अज्ञानात् मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि
कल्प्यन्ते ऽम्बुगते चंद्रे चलनादि यथांभसः

१८ प्रकाशो ऽर्कस्य, तोयस्य शैत्यं, अग्नेर् यथोष्णता
स्वभावः सच्चिदानंद-नित्यनिर्मलता ऽत्मनः

१९ स्व-बोधे नान्य-बोधेच्छा बोधरूपतया ऽत्मनः
न दीपस्यान्य-दीपेच्छा यथा स्वात्म-प्रकाशने

२० अरुणेनेव बोधेन पूर्वं संतमसे हृते
तत आविर्भवेत् आत्मा स्वयमेवांशुमान् इव

२१ आत्मा तु सततं प्राप्तो ऽप्यप्राप्तवदविद्यया
तन्नाशे प्राप्तवद् भाति स्व-कंठाभरणं यथा

२२ सम्यग्विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम्
एकं च सर्वं आत्मानं ईक्षते ज्ञान-चक्षुषा

२३ तीर्त्वा मोहार्णवं, हत्वा रागद्वेषादि-राक्षसान्
योगी शांति-समायुक्त आत्मा-रामो विराजते

२४ उपाधिस्थो ऽपि तद्धर्मैर् अलिप्तो व्योमवत् मुनिः
सर्ववित् मूढवत् तिष्ठेत् असक्तो वायुवत् चरेत्

२५ उपाधि-विलयाद् विष्णौ निर्विशेषं विशेत् मुनिः
जले जलं वियद् व्योम्नि तेजस् तेजसि वा यथा

[आत्म-बोधः]

:२: बंध-मोक्ष–कथा

१ अत्रैव शृणु वृत्तांतं अपूर्वं श्रुति-भाषितम्
कश्चिद् गांधार-देशीयो महारत्न-विभूषितः

२ स्व-गृहे स्वांगणे सुप्तः प्रमत्तः सन् कदाचन
रात्रौ चौरः समागत्य भूषणानां प्रलोभितः

३ बद्ध्वा देशांतरं चौरैर् नीतः सन् गहने वने
भूषणान्यपहृत्यापि बद्धाक्ष-कर-पादकः

४ निक्षिप्तो विपिने ऽतीव कुश-कंटक-वृश्चिकैः
व्याल-व्याघ्रादिभिश्चैव संकुले तरु-संकटे

५ कैश्चित् पांथैः परिप्राप्तैर् मुक्त-दृष्ट्यादि-बंधनः

६ स स्वस्थैर् उपदिष्टश्च पंडितो निश्चितात्मकः
ग्रामाद् ग्रामांतरं गच्छन् मेधावी मार्ग-तत्परः

७ गत्वा गांधार-देशं स स्व-गृहं प्राप्य पूर्ववत्
बांधवैः संपरिष्वक्तः सुखी भूत्वा स्थितो ऽभवत्

८ त्वमप्येवं अनेकेषु दुःख-दायिषु जन्मसु
भ्रांतो, दैवात् शुभे मार्गे जात-श्रद्धः सुकर्मकृत्

९ वर्णाश्रमाचार-परो ऽवाप्त-पुण्य-महोदयः
ईश्वरानुग्रहात् लब्धो ब्रह्मविद्-गुरुसत्तमः

१० विधिवत्-कृत-संन्यासो विवेकादि-युतः सुधीः
प्राप्तो ब्रह्मोपदेशो ऽथ वैराग्याभ्यासतः परम्

११ पंडितस् तत्र मेधावी युक्त्या वस्तु विचारयन्
निदिध्यासन-संपन्नः प्राप्तो हि त्वं परं पदम्

१२ भूत्वा विमुक्त-बंधस् त्वं छिन्न-द्वैतात्मसंशयः
निर्द्वंद्वो निःस्पृहो भूत्वा विचरस्व यथासुखम्

[तत्त्वोपदेशः]

:३: अद्वैत-मर्यादा

१ भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्
अद्वैतं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह

[तत्त्वोपदेशः]

२४ उपाधिस्थो ऽपि तद्धर्मैर् अलिप्तो व्योमवत् मुनिः
सर्ववित् मूढवत् तिष्ठेत् असक्तो वायुवत् चरेत्

२५ उपाधि-विलयाद् विष्णौ निर्विशेषं विशेत् मुनिः
जले जलं वियद् व्योम्नि तेजस् तेजसि वा यथा

[आत्म-बोधः]

:२: बंध-मोक्ष – कथा

१ अत्रैव शृणु वृत्तांतं अपूर्वं श्रुति-भाषितम्
कश्चिद् गांधार-देशीयो महारत्न-विभूषितः

२ स्व-गृहे स्वांगणे सुप्तः प्रमत्तः सन् कदाचन
रात्रौ चौरः समागत्य भूषणानां प्रलोभितः

३ बद्ध्वा देशांतरं चौरैर् नीतः सन् गहने वने
भूषणान्यपहृत्यापि बद्धाक्ष-कर-पादकः

४ निक्षिप्तो विपिने ऽतीव कुश-कंटक-वृश्चिकैः
व्याल-व्याघ्रादिभिश्चैव संकुले तरु-संकटे

५ कैश्चित् पांथैः परिप्राप्तैर् मुक्त-दृष्ट्यादि-बंधनः

६ स स्वस्थैर् उपदिष्टश्च पंडितो निश्चितात्मकः
ग्रामाद् ग्रामांतरं गच्छन् मेधावी मार्ग-तत्परः

ई. क्र. १३८५... १०१

७ गत्वा गांधार-देशं स स्व-गृहं प्राप्य पूर्ववत्
बांधवैः संपरिष्वक्तः सुखी भूत्वा स्थितो ऽभवत्

८ त्वमप्येवं अनेकेषु दुःख-दायिषु जन्मसु
भ्रांतो, दैवात् शुभे मार्गे जात-श्रद्धः सुकर्मकृत्

९ वर्णाश्रमाचार-परो ऽवाप्त-पुण्य-महोदयः
ईश्वरानुग्रहात् लब्धो ब्रह्मविद्-गुरुसत्तमः

१० विधिवत्-कृत-संन्यासो विवेकादि-युतः सुधीः
प्राप्तो ब्रह्मोपदेशो ऽद्य वैराग्याभ्यासतः परम्

११ पंडितस् तत्र मेधावी युक्त्या वस्तु विचारयन्
निदिध्यासन-संपन्नः प्राप्तो हि त्वं परं पदम्

१२ भूत्वा विमुक्त-बंधस् त्वं छिन्न-द्वैतात्मसंशयः
निर्द्वंद्वो निःस्पृहो भूत्वा विचरस्व यथासुखम्

[तत्त्वोपदेशः]

:३: अद्वैत-मर्यादा

१ भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्
अद्वैतं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह

[तत्त्वोपदेशः]

:४: वेदांत-डिंडिमः

१ दृग्-दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्पर-विलक्षणौ
दृग् ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदांत-डिंडिमः

२ अहं साक्षीति यो विद्याद् विविच्यैवं पुनः पुनः
स एव मुक्तः स विद्वान् इति वेदांत-डिंडिमः

३ घट-कुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्रमेव च
तद्वद् ब्रह्म जगत् सर्वं इति वेदांत-डिंडिमः

४ ब्रह्म सत्यं, जगत् मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रं इति वेदांत-डिंडिमः

[ब्रह्मज्ञानावलीमाला]

:५: श्रुति-तात्पर्यम्

स्व-रूपम्

१ अस्ति स्वय-मित्यस्मिन् अर्थे कस्यास्ति संशयः पुंसः ?
अत्रापि संशयश्चेत् संशयिता यः स एव भवसि त्वम्

२ मानं प्रबोधयन्तं बोधं मानेन ये बुभुत्सन्ते
एधोभिरेव दहनं दग्धुं वांछन्ति ते महात्मानः

३ प्रत्यक्षाद्यनवगतं श्रुत्या प्रतिपादनीय मद्वैतम्
द्वैतं न प्रतिपाद्यं तस्य स्वत एव लोक-सिद्धत्वात्

४ जगदाकारतया ऽपि प्रथते गुरुशिष्य-विग्रहतया ऽपि
ब्रह्माकारतया ऽपि प्रतिभातीदं परात्परं तत्त्वम्

५ सत्यं जगदिति भानं संसृतये स्यात् अपक्व-चित्तानाम्
तस्मात् असत्य मेतत् निखिलं प्रतिपादयन्ति निगमान्ताः

६ परिपक्व-मानसानां पुरुष-वराणां पुरातनैः सुकृतैः
ब्रह्मैव इदं सर्वं जगदिति भूयः प्रबोधयति एषः

७ किमिदं, किमस्य रूपं, कथमिदमासीत्, अमुष्य को हेतुः
इति न कदाऽपि विचिंत्यं चिंत्यं मायेति धीमता विश्वम्

८ दंतिनि दारु-विकारे दारु तिरोभवति सोऽपि तत्रैव
जगति तथा परमात्मा, परमात्मनि अपि जगत् तिरोधत्ते

९ आत्ममये महति पटे विविध-जगच्-चित्र मात्मना लिखितम्
स्वयमेव केवल मसौ पश्यन् प्रमुदं प्रयाति परमात्मा

१० एष विशेषो विदुषां पश्यंतो ऽपि प्रपंच-संसारम्
पृथ गात्मनो न किंचित् पश्येयुः सकलनिगम-निर्णीतात्

११ किं चिंत्यं किमचिंत्यं किं कथनीयं किमप्यकथनीयम्
किं कृत्यं किमकृत्यं निखिलं ब्रह्मेति जानतां विदुषाम्

१२ निखिलं दृश्य-विशेषं दृग्रूपत्वेन पश्यतां विदुषाम्
बंधो नाऽपि न मुक्तिर् न परात्मत्वं न चाऽपि जीवत्वम्

[स्वात्म-निरूपणम्]

: ६ : अद्वैतोपमानम्

१ अक्षि-दोषाद् यथैको ऽपि द्वयवत् भाति चंद्रमाः
एकोऽप्यात्मा तथा भाति द्वयवत् मायया मृषा

२ आकाशात् अन्य आकाश आकाशस्य यथा न हि
एकत्वात् आत्मनो नान्य आत्मा सिध्यति चात्मनः

३ मेघ-योगात् यथा नीरं करकाकारतां इयात्
मायायोगात् तथैवात्मा प्रपंचाकारतां इयात्

४ अयः-काष्ठादिकं यद्वत् वह्निवत् वह्नि-योगतः
भाति स्थूलादिकं सर्वं आत्मवत् स्वात्म-योगतः

५ पिष्टादिर् गुड-संपर्कात् गुडवत् प्रीतिमान् यथा
आत्म-योगात् प्रमेयादिर् आत्मवत् प्रीतिमान् भवेत्

६ नानाविधेषु कुंभेषु वसत्येकं नभो यथा
नानाविधेषु देहेषु तद्वत् एको वसाम्यहम्

७ उत्तमादीनि पुष्पाणि वर्तन्ते सूत्रके यथा
उत्तमाद्यास् तथा देहा वर्तन्ते मयि सर्वदा

८ पर्यंक-रज्जु-रंध्रेषु नानेवैकापि सूर्य-भा
एको ऽप्यनेकवत् भाति तथा क्षेत्रेषु सर्वगः

९ मुकुरस्थं मुखं यद्वत् मुखवत् प्रथते मृषा
बुद्धिस्थाभासकस् तद्वत् आत्मवत् प्रथते मृषा

१० ताम्रकल्पित-देवादिस् ताम्रात् अन्य इव स्फुरेत्
प्रतिभास्यादिरूपेण तथात्मोत्थं इदं जगत्

११ क्षीर-योगात् यथा नीरं क्षीरवत् दृश्यते मृषा
आत्म-योगात् अनात्मायं आत्मवत् दृश्यते तथा

१२ क्षीरनीर-विवेक-ज्ञो हंस एव न चेतरः
आत्मानात्म-विवेक-ज्ञो यतिरेव न चेतरः

[अद्वैतानुभूतिः]

:७: ब्रह्मानुचिंतनम्

१ अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्य-मव्ययम्
इति स्यात् निश्चितो मुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत्

२ अहं आत्मा न चान्यो ऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्
सच्चिदानंदरूपो ऽहं नित्यमुक्त-स्वभाववान्

३ अज्ञानात् ब्रह्मणो जातं आकाशं बुद्बुदोपमम्
आकाशात् वायु-रुत्पन्नो वायोस् तेजस् ततः पयः

४ अद्भ्यश्च पृथिवी जाता ततो व्रीहि-यवादिकम्
पृथिवी अप्सु, पयो वह्नौ, वह्निर् वायौ, नभस्य-सौ

५ नभो ऽप्यव्याकृते, तत् च शुद्धे, शुद्धो ऽस्म्यहं हरिः
अहं विष्णुः, अहं विष्णुः, अहं विष्णुः, अहं हरिः

६ आदिमध्यांत-मुक्तो ऽहं न बद्धो ऽहं कदाचन
स्वभाव-निर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः

७ ब्रह्मैवाहं न संसारी, मुक्तो ऽहं इति भावयेत्
अशक्नुवन् भावयितुं वाक्यं एतत् सदा ऽभ्यसेत्

८ यदभ्यासेन तद्भावो भवेत् भ्रमर-कीटवत्
अत्रा-पहाय संदेहं अभ्यसेत् कृत-निश्चयः

९ यावज्जीवं सदाभ्यासात् जीवन्मुक्तो भवेत् यतिः
नाहं देहो न च प्राणो नेंद्रियाणि तथैव च

१० न मनो ऽहं न बुद्धिश्च नैव चित्तं अहंकृतिः
सदा-साक्षिस्वरूपत्वात् शिव एवास्मि केवलः

११ मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्
मयि सर्वं लयं याति तद् ब्रह्मास्म्यहमद्वयम्

१२ अत्र प्रमाणं वेदान्ता गुरवो ऽनुभवस् तथा
नाहं देहो, न मे देहः, केवलो ऽहं सनातनः

[ब्रह्मानुचिंतनम्]

: ८ : उन्मनी

१ नेत्रे ययोन्मेषनिमेष-शून्ये
वायुर् यया वर्जित-रेचपूरः
मनश्च संकल्प-विकल्प-शून्यं
मनोन्मनी सा मयि संनिधत्ताम्

२ चित्तेंद्रियाणां चिर-निग्रहेण
श्वास-प्रचारे शमिते यमींद्राः
निवात-दीपा इव निश्चलांगा
मनोन्मनी-मग्नधियो भवन्ति

३ उन्मन्यवस्थाधिगमाय विद्वन्
उपाय-मेकं तव निर्दिशामः
पश्यन् उदासीनतया प्रपंचं
संकल्प-मुन्मूलय सावधानः

४ प्रसह्य संकल्प-परंपराणां
संभेदने संतत-सावधानम्
आलंब-नाशात् अपचीयमानं
शनैः शनैः शांति-मुपैति चेतः

५ निश्वास-लोपैर् निभृतैः शरीरैर्
नेत्रांबुजैर् अर्धनिमीलितैश्च
आविर्भवन्तीं अमनस्कमुद्रां
आलोकयामो मुनि-पुंगवानाम्

६ अमी यमींद्राः सहजामनस्कात्
अहं-ममत्वे शिथिलायमाने
मनोतिगं मारुत-वृत्ति-शून्यं
गच्छन्ति भावं गगनावशेषम्

७ निवर्तयन्तीं निखिलेंद्रियाणि
प्रवर्तयन्तीं परमात्म-योगम्
संविन्मयीं तां सहजामनस्कां
कदा गमिष्यामि गतान्यभावः

८ प्रत्यग्विमर्शातिशयेन पुंसां
प्राचीन-गंधेषु पलायितेषु
प्रादुर्भवेत् काचि दजाड्य-निद्रा
प्रपंच-चिंतां परिवर्जयन्ती

९ विच्छिन्न-संकल्पविकल्प-मूले
निःशेष-निर्मूलित-कर्मजाले
निरंतराभ्यास-नितांतभद्रा
सा जृंभते योगिनि योग-निद्रा

१० विश्रांति मासाद्य तुरीय-तल्पे
विश्वाद्यवस्था-त्रितयोपरिस्थे
संविन्मयीं कामपि सर्वकालं
निद्रां सखे निर्विश निर्विकल्पाम्

११ प्रकाशमाने परमात्म-भानौ
नश्यत्य विद्या-तिमिरे समस्ते
अहो बुधा निर्मल-दृष्टयोऽपि
किंचित् न पश्यन्ति जगत् समग्रम्

[योग-तारावली]

: ९ : मह्यं नमः

१　देहो नाहमचेतनोऽयमनिशं कुड्यादिवत् निश्चितो
नाहं प्राणमयोऽपि वा दृति-धृतो वायुर् यथा निश्चितः
सोऽहं नापि मनोमयः कपि-चलः कार्पण्य-दुष्टो न वा
बुद्धिर् बुद्ध-कुवृत्तिकेव कुहना नाज्ञानमंधंतमः

२　मत्तोऽन्यत् न हि किंचिदस्ति यदि चिद्भास्यं ततस् तत् मृषा
गुंजा-वह्निवदेव सर्वकलनाधिष्ठानभूतोऽस्म्यहम्
सर्वस्यापि दृगस्म्यहं सम-रसः शांतोऽस्म्यपापोऽस्म्यहं
पूर्णोऽस्मि द्वय-वर्जितोऽस्मि विपुलाकाशोऽस्मि नित्योऽस्म्यहम्

३　मय्यस्मिन् परमार्थके श्रुतिशिरो-वेद्ये स्वतो-भासने
का वा विप्रतिपत्तिरेतदखिलं भात्येव यत्संनिधेः
सौरालोकवशात् प्रतीतमखिलं पश्यन् न तस्मिन् जनः
संदिग्धोऽस्त्यत एव केवल-शिवः कोऽपि प्रकाशोऽस्म्यहम्

४　गंतव्यं किमिहास्ति सर्वपरिपूर्णस्याप्यखंडाकृतेः
कर्तव्यं किमिहास्ति निष्क्रिय-तनोर् मोक्षैकरूपस्य मे
निर्द्वैतस्य न हेयमन्यदपि वा नो वाप्युपेयांतरं
शांतोऽद्यास्मि विमुक्त-तोय-विमलो मेघो यथा निर्मलः

५ किं नः प्राप्तमितः पुरा, किमधुना लब्धं विचारादिना
यस्मात् तत् सुखरूपमेव सततं जाज्वल्यमानोऽस्म्यहम्
किं वापेक्ष्यमिहापि मय्यतितरां मिथ्या-विचारादिकं
द्वैताद्वैत-विवर्जिते सम-रसे मौनं परं संमतम्

६ श्रोतव्यं च किमस्ति पूर्णसुदृशो मिथ्यापरोक्षस्य मे
मंतव्यं च न मेऽस्ति किंचिदपि वा निःसंशय-ज्योतिषः
ध्यातृध्येय-विभेदहानि-वपुषो न ध्येय-मस्त्येव मे
सर्वात्मैक-महारसस्य सततं नो वा समाधिर् मम

७ आत्मानात्म-विवेचनापि मम नो विद्वत्-कृता रोचते
ऽनात्मा नास्ति, यदस्ति गोचर-वपुः को वा विवेक्तुं क्षमी
मिथ्यावाद-विचार-चिंतन-महो कुर्वंत्य-दृष्टात्मका
भ्रांता एव न पार-गा दृढ-धियस् तूष्णीं शिलावत् स्थिताः

८ योऽहं पूर्वमितः प्रशांत-कलना-शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्म्यहं
यस्मात् मत्त इदं समुत्थित-मभूत् एतत् मया धार्यते
मय्येव प्रलयं प्रयाति निरधिष्ठानाय तस्मै सदा
सत्यानंदचिदात्मकाय विपुल-प्रज्ञाय मह्यं नमः

[प्रौढानुभूतिः]

:१०: मौन-माश्रये

१ सत्यचिद्घन मनंत मद्वयं
सर्वदृश्य-रहितं निरामयम्
यत् पदं विमल मद्वयं शिवं
तत् सदा हमिति मौन माश्रये

२ पूर्ण मद्वय-मखंड-चेतनं
विश्व-भेदकलनादि-वर्जितम्
अद्वितीय-परसंविदंशकं
तत् सदा हमिति मौन माश्रये

३ जन्ममृत्यु-सुखदुःख-वर्जितं
जाति-नीति-कुल-गोत्र-दूरगम्
चिद्विवर्त-जगतो ऽस्य कारणं
तत् सदा हमिति मौन माश्रये

[स्वात्म-प्रकाशिका]

ज्ञान-चर्चा

प्रकरणानि

१	नव-मतवादाः	२३
२	शून्यशंका-निरसनम्	२४
३	सुख-प्रयत्नो व्यर्थः	२४
४	श्रवणसहकारि-साधनापेक्षा	१४
५	गीता-रहस्यम्	१५
		१००

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

: १ : नव-मतवादाः

१ आत्मानात्म-विवेकार्थं विवादो ऽयं निरूप्यते
येना-त्मानात्मनोस् तत्त्वं विविक्तं प्रस्फुटायते

२ मूढा अश्रुत-वेदान्ताः स्वयं-पंडित-मानिनः
ईशप्रसाद्-रहिताः सद्गुरोश्च बहिर्मुखाः

१

३ अत्यंत-पामरः कश्चित् पुत्र आत्मेति मन्यते
आत्मनीव स्व-पुत्रे ऽपि प्रबल-प्रीति-दर्शनात्

२

४ तन्मतं दूषयत्यन्यः पुत्र आत्मा कथं त्विति
प्रीतिमात्रात् कथं पुत्र आत्मा भवितु-मर्हति

५ अहंपद-प्रत्ययार्थो देह एव न चेतरः
प्रत्यक्षः सर्व-जंतूनां देहो ऽहं इति निश्चयः

६ आत्मायं देह एवेति चार्वाकेण विनिश्चितम्
तन्मतं दूषयत्यन्यो ऽसहमानः पृथग्जनः

३

७ देह आत्मा कथं नु स्यात् पर-तंत्रो ह्यचेतनः
इंद्रियैश् चाल्यमानो ऽयं चेष्टते न स्वतः क्वचित्

८ बधिरो ऽहं च काणो ऽहं मूक इत्यनुभूतितः
इंद्रियाणि भवन्त्यात्मा येषां अस्त्य-र्थ-वेदनम्

४

९ निश्चयं दूषत्यन्यो ऽसहमानः पृथग्जनः
इंद्रियाणि कथं त्वात्मा करणानि कुठारवत्

१० इंद्रियाणां चेष्टयिता प्राणो ऽयं पंच-वृत्तिकः
सर्वावस्था-स्ववस्थावान् सो ऽयं आत्मत्व-मर्हति
अहं क्षुधावान् तृष्णावान् इत्या-द्यनुभवात् अपि

५

११ इति निश्चय-मेतस्य दूषय-त्यपरो जडः
भवत्या-त्मा कथं प्राणो वायुरेवैष आंतरः

१२ बहिर् यात्य-न्तरायाति भीस्त्रका-वायुवत् मुहुः
न हितं वा-हितं वा स्वं अन्यद् वा वेद किंचन

१३ मनस् तु सर्व जानाति सर्ववेदन-कारणम्
यत् तस्मात् मन एवात्मा प्राणस् तु न कदाचन

६

१४ इति निश्चय मेतस्य दूषय त्यपरो जडः
कथं मनस आत्मत्वं करणस्य दृगादिवत्

१५ अहं कर्ता स्म्यहं भोक्ता सुखी त्यनुभवात् अपि
बुद्धिर् आत्मा भवत्येव बुद्धि-धर्मो ह्यहंकृतिः

७

१६ प्राभाकरस् तार्किकश्च तौ उभौ अप्यमर्षया
तन्निश्चयं दूषयतो बुद्धिर् आत्मा कथं त्विति

१७ अज्ञो ऽहं इत्यनुभवात् आ-स्त्रीबालादि-गोचरात्
भवत्य ज्ञानमेवा त्मा न तु बुद्धिः कदाचन

१८ दुःखप्रत्यय-शून्यत्वात् आनंदमयता मता
अज्ञाने सकलं सुप्तौ बुद्ध्यादि प्रविलीयते

८

१९ इति तन्निश्चयं भाट्टा दूषयन्ति स्व-युक्तिभिः
कथं अज्ञानमेवा त्मा ज्ञानं चाप्युपलभ्यते
ज्ञानाभावे कथं विद्युर् अज्ञो ऽहमिति चाज्ञताम्

९

२० इति निश्चय मेतेषां दूषय त्यपरो जडः
ज्ञानाज्ञानमयस् त्वात्मा कथं भवितु मर्हति

२१ सुप्तोत्थित-जनैः सर्वैः शून्यमेवा नुस्मर्यते
यत् ततः शून्यमेवात्मा न ज्ञानाज्ञान-लक्षणः

२२ वेदेना प्यसदेवेदं अग्र आसीत् इति स्फुटम्
निरुच्यते यतस् तस्मात् शून्यस्यैवा त्मता मता

× × ×

२३ इत्येवं पंडितंमन्यैः परस्पर-विरोधिभिः
निर्णीत-मत-जातानि खंडितान्येव पंडितैः

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

:२: शून्यशंका-निरसनम्

१ सुषुप्ति-काले सकले विलीने
शून्यं विना नान्य दिहोपलभ्यते
शून्यं त्वनात्मा न ततः परः को
ऽप्यात्माभिधानस् त्वनुभूयते ऽर्थः

२ यद्यस्ति चात्मा किमु नोपलभ्यते
सुप्तौ यथा तिष्ठति किं प्रमाणम्
किं-लक्षणो ऽसौ स कथं न बाध्यते
प्रबाध्यमाने ष्वहमादिषु स्वयम्

३ अतिसूक्ष्मतरः प्रश्नस् तवायं सदृशो मतः
सूक्ष्मार्थ-दर्शनं सूक्ष्म-बुद्धिष्वेव प्रदृश्यते

४ शृणु वक्ष्यामि सकलं यद् यत् पृष्टं त्वयाधुना
रहस्यं परमं सूक्ष्मं ज्ञातव्यं च मुमुक्षुभिः

५ बुद्ध्यादि सकलं सुप्तौ अनुलीनं स्व-कारणे
अव्यक्ते वटवद् बीजे तिष्ठत्यविकृतात्मना

६ तिष्ठत्येव स्वरूपेण न तु शून्यायते जगत्
क्वचित् अंकुररूपेण क्वचिद् बीजात्मना वटः

७ जगतो दर्शनं शून्यं इति प्राहुर् अ-तद्विदः
नासतः सत उत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते

८ सुषुप्तौ शून्यमेवेति केन पुंसा तवेरितम्
हेतुनानुमितं केन कथं ज्ञानं त्वयोच्यताम्

९ स्वेनानुभूतं स्वयमेव वक्ति
स्व-सुप्ति-काले स्थित-शून्यभावम्
तत्र स्व-सत्तां अनवेक्ष्य मूढः
स्वस्यापि शून्यत्वमयं ब्रवीति

१० अवेद्यमानः स्वय मन्यलोकैः
सौषुप्तिकं धर्म मवैति साक्षात्
बुद्ध्याद्यभावस्य च यो ऽत्र बोद्धा
स एष आत्मा खलु निर्विकारः

११ यस्येदं सकलं विभाति महसा तस्य स्वयं-ज्योतिषः
सूर्यस्यैव किमस्ति भासकमिह प्रज्ञादि सर्वं जडम्
न ह्यर्कस्य विभासकं क्षिति-तले दृष्टं तथैवा त्मनो
नान्यः को ऽप्यनुभासको ऽनुभविता नातः परः कश्चन

१२ बुद्ध्यादि-वेद्य-विलयात् अयमेक एव
सुप्तौ न पश्यति शृणोति न वेत्ति किंचित्
सौषुप्तिकस्य तमसः स्वयमेव साक्षी
भूत्वात्र तिष्ठति सुखेन च निर्विकल्पः

१३ अनुस्यूता त्मनः सत्ता जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु
अह मस्मी त्यतो नित्यो भवत्या त्माय मव्ययः

१४ आयातासु गतासु शैशवमुखावस्थासु जाग्रन्मुखा—
स्वन्यास्व प्यखिलासु वृत्तिषु धियो दुष्टा स्वदुष्टा स्वपि
गंगाभंग-परंपरासु जलवत् सत्तानुवृत्तात्मनस्
तिष्ठत्येव सदा स्थिरा हमहामि त्येकात्मता साक्षिणः

१५ प्रतिपद-महमादयो विभिन्नाः
क्षण-परिणामितया विकारिणस् ते
न परिणाति-रमुष्य निष्कलत्वात्
अय-मविकार्यत एव नित्य आत्मा

१६ श्रुत्युक्ताः षोडश-कलाश् चिदाभासस्य नात्मनः
निष्कलत्वात् नास्य लयस् तस्मात् नित्यत्व-मात्मनः

१७ कुड्यादेस् तु जडस्य नैव घटते भानं स्वतः सर्वदा
सूर्यादि-प्रभया विना क्वचिदपि प्रत्यक्ष-मेतत् तथा
बुद्ध्यादेरपि न स्वतो ऽस्त्यणुरपि स्फूर्तिर् विनैवा-त्मना
सोऽयं केवल-चिन्मयः श्रुति-मतो भानुर् यथा-रुङ्मयः

१८ स्व-भासने वा-न्यपदार्थ-भासने
नार्कः प्रकाशांतर-मीष-दिच्छति
स्व-बोधने वा-प्यहमादि-बोधने
तथैव चिद्धातु-रयं परात्मा

१९ अन्य-प्रकाशं न किमप्यपेक्ष्य
यतो ऽय-माभाति निजात्मनैव
ततः स्वयंज्योति-रयं चिदात्मा
न ह्यात्म-भाने पर-दीप्त्यपेक्षा

२० आत्मनः सुखरूपत्वात् आनंदत्वं स्व-लक्षणम्
पर-प्रेमास्पदत्वेन सुखरूपत्व मात्मनः

२१ सुख-हेतुषु सर्वेषां प्रीतिः सावधि रीक्ष्यते
कदापि नावधिः प्रीतेः स्वात्मनि प्राणिनां क्वचित्

२२ आत्मा तः परम-प्रेमास्पदः सर्व-शरीरिणाम्
यस्य शेषतया सर्वं उपादेयत्व मृच्छति

२३ प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च यच्च यावच्च चेष्टितम्
आत्मार्थमेव नान्यार्थं नातः प्रियतरः परः

२४ तस्मात् आत्मा केवलानंदरूपो
यः सर्वस्माद् वस्तुनः श्रेष्ठ उक्तः
यो वै अस्मात् मन्यतेऽ न्यं प्रियं यं
सोऽयं तस्मात् शोकमेवा नुभुंक्ते

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

: ३ : सुख-प्रयत्नो व्यर्थः

१ अपरः क्रियते प्रश्नो मयायं क्षम्यतां प्रभो
अज्ञ-वाग् अपराधाय कल्पते न महात्मनाम्

२ आत्मनः सुखरूपत्वे प्रयत्नः किमु देहिनाम्
एष मे संशयः स्वामिन् कृपयैव निरस्यताम्

३ आनंदरूपं आत्मानं अज्ञात्वैव पृथग्जनः
बहिः सुखाय यतते न तु कश्चिद् विदन् बुधः

४ अज्ञात्वैव हि निक्षेपं भिक्षां अटति दुर्मतिः
स्व-वेश्मनि निधिं ज्ञात्वा को नु भिक्षां अटेत् सुधीः

५ स्थूलं च सूक्ष्मं च वपुः स्वभावतः
दुःखात्मकं स्वात्मतया गृहीत्वा
विस्मृत्य च स्वं सुखरूप-मात्मनः
दुःखप्रदेभ्यः सुख-मज्ञ इच्छति

६ न हि दुःखप्रदं वस्तु सुखं दातुं समर्हति
किं विषं पिबतां जंतोर् अमृतत्वं प्रयच्छति

७ आत्मा-न्यः सुख-मन्यच्च एवं निश्चित्य पामरः
बहिः-सुखाय यतते सत्यमेव न संशयः

८ इष्टस्य वस्तुनो ध्यान-दर्शनाद्युपभुक्तिषु
प्रतीयते य आनंदः सर्वेषां इह देहिनाम्

९ स वस्तु-धर्मो नो यस्मात् मनस्येवो-पलभ्यते
वस्तु-धर्मस्य मनसि कथं स्यात् उपलंभनम्

१० अन्यत्र त्वन्य-धर्माणां उपलंभो न दृश्यते
तस्मात् न वस्तुधर्मो ऽयं आनंदस् तु कदाचन

११ नाप्येष धर्मो मनसो ऽसत्यर्थे तददर्शनात्
असति व्यंजके व्यंग्यं नोदेतीति न मन्यताम्

१२ सत्यर्थे ऽपि च नोदेति ह्यानंदस् तूक्त-लक्षणः
सत्यपि व्यंजके व्यंग्यानुदयो नैव संमतः

१३ सत्त्वप्रधाने चित्तेऽस्मिन् त्वात्मैव प्रतिबिंबति
आनंद-लक्षणः स्वच्छे पयसीव सुधाकरः

१४ सोऽयं आभास आनंदश् चित्ते यः प्रतिबिंबितः
पुण्योत्कर्षापकर्षाभ्यां भवत्यु च्चावचः स्वयम्

१५ यो बिंबभूत आनंदः स आत्मानंद-लक्षणः
शाश्वतो निर्द्वयः पूर्णो नित्य एकोऽपि निर्भयः

१६ स्थूलस्यापि च सूक्ष्मस्य दुःखरूपस्य वर्ष्मणः
लये सुषुप्तौ स्फुरति प्रत्यगानन्द-लक्षणः

१७ न ह्यत्र विषयः कश्चित् नापि बुद्ध्यादि किंचन
आत्मैव केवलानंद-मात्रस् तिष्ठति निर्द्वयः

१८ दुःखाभावः सुखमिति यद् उक्तं पूर्व-वादिना
अनाघ्रातोपनिषदा तद् असारं मृषा वचः

१९ दुःखाभावस्तु लोष्टादौ विद्यते नानुभूयते
सुख-लेशोऽपि सर्वेषां प्रत्यक्षं तादिदं खलु

२० सद्घनोऽयं चिद्घनोऽयं आनंद-घन इत्यपि
अपरोक्षतयैवात्मा समाधौ अनुभूयते

२१ यस्य-कस्यापि योगेन यत्र-कुत्रापि दृश्यते
आनंदः स परस्यैव ब्रह्मणः स्फूर्ति-लक्षणः

२२ सत्त्वं चित्त्वं तथानंदस्वरूपं परमात्मनः
निर्गुणस्य गुणायोगात् गुणास्तु न भवन्ति ते

२३ उष्णत्वं च प्रकाशश्च यथा वह्नेस् तथात्मनः
सत्त्व-चित्त्वानंदतादि स्वरूपं इति निश्चितम्

२४ अत एव सजातीय-विजातीयादि-लक्षणः
भेदो न विद्यते वस्तुन्यद्वितीये परात्मनि

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

:४: श्रवणसहकारि-साधनापेक्षा

१ अखंडाख्या वृत्तिरेषा वाक्यार्थ-श्रुतिमात्रतः
श्रोतुः संजायते किं वा क्रियांतरमपेक्षते

२ मुख्य-गौणादि-भेदेन विद्यन्तेऽत्राधिकारिणः
तेषां प्रज्ञानुसारेणाखंडा वृत्तिर् उदेष्यते

३ श्रद्धा-भक्ति-पुरःसरेण विहितेनैवेश्वरं कर्मणा
संतोष्यार्जित-तत्प्रसाद्-महिमा जन्मान्तरेष्वेव यः
नित्यानित्यविवेक-तीव्रविरति-न्यासादिभिः साधनैर्
युक्तः स श्रवणे सतां अभिमतो मुख्याधिकारी द्विजः

४ अध्यारोपापवाद्-क्रममनुसरता देशिकेनात्र वेत्त्रा
वाक्यार्थे बोध्यमाने सति सपदि सतः शुद्ध-बुद्धेर् अमुष्य
नित्यानंदाद्वितीयं निरुपममलं यत् परं तत्त्वमेकं
तद् ब्रह्मैवाहमस्मीत्युदयाति परमाखंडताकार-वृत्तिः

५ प्रज्ञा-मांद्यं भवेत् येषां तेषां न श्रुतिमात्रतः
स्यात् अखंडाकारवृत्तिर् विना तु मननादिना

६ श्रवणात् मननात् ध्यानात् तात्पर्येण निरंतरम्
बुद्धेः सूक्ष्मत्वमायाति ततो वस्तूपलभ्यते

७ मंदप्रज्ञावतां तस्मात् करणीयं पुनः पुनः
श्रवणं मननं ध्यानं सम्यग् वस्तूपलब्धये

८ सर्ववेदान्त-वाक्यानां षड्भिर् लिंगैः सदद्वये
परे ब्रह्मणि तात्पर्य-निश्चयं श्रवणं विदुः

९ श्रुतस्यैवाद्वितीयस्य वस्तुनः प्रत्यगात्मनः
वेदान्तवाक्यानुगुण-युक्तिभिस् त्वनुचिंतनम्

१० मननं तच्छ्रुतार्थस्य साक्षात्करण-कारणम्

११ विजातीय-शरीरादि-प्रत्यय-त्याग-पूर्वकम्
सजातीयात्मवृत्तीनां प्रवाहकरणं यथा
तैलधारावद्-च्छिन्न-वृत्त्या तद्-ध्यान-मिष्यते

१२ तावत्कालं प्रयत्नेन कर्तव्यं श्रवणं सदा
प्रमाण-संशयो यावत् स्व-बुद्धेर् न निवर्तते

१३ प्रमेय-संशयो यावत् तावत् तु श्रुति-युक्तिभिः
आत्म-याथार्थ्य-निश्चित्यै कर्तव्यं मननं मुहुः

१४ विपरीतात्मधीर् यावत् न विनश्यति चेतसि
तावत् निरंतरं ध्यानं कर्तव्यं मोक्ष-मिच्छता

[सर्ववेदान्त-सिद्धान्तसार-संग्रहः]

:५: गीता-रहस्यम्

१ श्रोत्रस्य दैवतं दिक् स्यात्, त्वचो वायुर्, दृशो रविः
जिह्वाया वरुणो दैवं, घ्राणस्य त्वश्विनौ उभौ

२ वाचो ऽग्निर्, हस्तयोर् इंद्रः, पादयोस्तु त्रिविक्रमः
पायोर् मृत्युर्, उपस्थस्य त्वधिदैवं प्रजापतिः

३ मनसो दैवतं चद्रो, बुद्धेर् दैवं बृहस्पतिः
रुद्रस् त्वहंकृतेर् दैवं, क्षेत्रज्ञश् चित्त-दैवतम्

४ दिगाद्या देवताः सर्वाः खादि-सत्त्वांश-संभवाः
संमिता इंद्रिय-स्थाने ष्विंद्रियाणां समंततः
निगृह्णन्त्य नुगृह्णन्ति प्राणि-कर्मानुरूपतः

५ शरीर-करणग्रामा प्राणाहमधिदेवताः
पंचैते हेतवः प्रोक्ता निष्पत्तौ सर्व-कर्मणाम्

६ कर्मानुरूपेण गुणोदयो भवेत्
गुणानुरूपेण मनः-प्रवृत्तिः
मनोनुवृत्तैर् उभयात्मकेंद्रियैर्
निर् वर्त्यते पुण्य मपुण्य मत्र

७ करोति विज्ञानमयो ऽभिमानं
कर्ताहमेवेति तदात्मना स्थितः
आत्मा तु साक्षी न करोति किंचित्
न कारयत्येव तटस्थवत् सदा

८ द्रष्टा श्रोता वक्ता कर्ता भोक्ता भवत्य-हंकारः
स्वय-मेतद्-विकृतीनां साक्षी निर्लेप एवात्मा

९ आत्मनः साक्षिमात्रत्वं न कर्तृत्वं न भोक्तृता
रविवत् प्राणिभिर् लोके क्रियमाणेषु कर्मसु

१० न ह्यकः कुरुते कर्म न कारयति जंतवः
स्व-स्वभावानुरोधेन वर्तन्ते स्वस्व-कर्मसु

११ तथैव प्रत्यगात्मापि रविवत् निष्क्रियात्मना
उदासीनतयैवा-स्ते देहादीनां प्रवृत्तिषु

१२ अज्ञात्वैवं परं तत्त्वं माया-मोहित-चेतसः
स्वात्मन्या-रोपयन्त्येतत् कर्तृत्वाद्य-न्य-गोचरम्

१३ आत्म-स्वरूप-मविचार्य विमूढ-बुद्धिः
आरोपय-त्यखिल-मेत-दनात्म-कार्यम्
स्वात्मन्य-संग-चिति निष्क्रिय एव चंद्रे
दूरस्थ-मेघकृत-धावनवत् भ्रमेण

१४ अस्मिन् आत्मन्य नात्मत्वं अनात्मन्या त्मतां पुनः
विपरीततया ध्यस्य संसरन्ति विमोह-तः

१५ अनात्मनो जन्म-जरा-मृति-क्षुधा-
तृष्णा-सुख-क्लेश-भयादि-धर्मान्
विपर्ययेण ह्यतथाविधे ऽस्मिन्
आरोपयन्त्या त्मनि बुद्धि-दोषात्

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

उपनिषत्-पद्धतिः

प्रकरणानि

१	ब्रह्मविद्यारंभः	८
२	वेदांत-श्रवणं कुर्यात्	१०
३	ज्ञान-निष्ठा कर्तव्या	९
४	अ-नियोज्यो ऽहम्	५
५	सेतुः सर्व-व्यवस्थानाम्	५
६	मनो हि अविद्या	११
७	मनसः शोधनम्	९
८	मनः-संबोधनम्	११
९	मनसः साक्षी	९
१०	मानसं तीर्थम्	५
११	जीवन्मुक्तानंदलहरी	६
१२	द्वादशी	१२
		१००

मराठी ग्रंथ संग्रहालय, ठाणे. स्थळप्रत
अनुक्रम .... वि: ....
.... क्रं: ....

: १ : ब्रह्मविद्यारंभः

१ कर्माणि देह-योगार्थं, देह-योगे प्रियाप्रिये
ध्रुवे स्यातां, ततो रागो द्वेषश्चैव ततः क्रियाः

२ धर्माधर्मौ ततो ऽज्ञस्य देह-योगस् तथा पुनः
एवं नित्य-प्रवृत्तो यं संसारश् चक्रवत् भृशम्

३ अज्ञानं तस्य मूलं स्यात् इति तद्हान मिष्यते
ब्रह्म-विद्या त आरब्धा यतो निःश्रेयसं भवेत्

४ विद्यैवा ज्ञान-हानाय न कर्मा प्रतिकूलतः
नाज्ञानस्या प्रहाणे हि रागद्वेष-क्षयो भवेत्

५ रागद्वेष-क्षयाभावे कर्म दोषोद्भवं ध्रुवम्
तस्मात् निःश्रेयसार्थाय विद्यैवात्र विधीयते

६ प्रत्यवायस्तु तस्यैव यस्या हंकार इष्यते
अहंकार-फलार्थित्वे विद्येते नात्मवेदिनः

७ तस्मात् अज्ञान-हानाय संसार-विनिवृत्तये
ब्रह्मविद्या-विधानाय प्रारब्धो पनिषत् त्वियम्

८ सदेः उप-नि-पूर्वस्य क्विपि चोपनिषत् भवेत्
मंदीकरण-भावाच्च गर्भादेः शातनात् तथा

[उपदेश-साहस्री]

:२: वेदांत-श्रवणं कुर्यात्

१ वेदांत-श्रवणं कुर्यात् मननं चोपपत्तिभिः
योगेना भ्यसनं नित्यं ततो दर्शन मात्मनः

२ शब्द-शक्तेर् अचिंत्यत्वात् शब्दात् एवा परोक्ष-धीः
प्रसुप्तः पुरुषो यद्वत् शब्देनैवा वबुद्ध्यते

३ आत्मानात्म-विवेकेन ज्ञानं भवति निश्चलम्
गुरुणा बोधितः शिष्यः शब्द-ब्रह्मा तिवर्तते

४ कर्म-शास्त्रे कुतो ज्ञानं तर्के नैवास्ति निश्चयः
सांख्य-योगौ भिदापन्नौ शाब्दिकाः शब्द-तत्पराः

५ अन्ये पाषंडिनः सर्वे ज्ञानवार्ता-सुदुर्लभाः
एकं वेदांत-विज्ञानं स्वानुभूत्या विराजते

६ चित्तं चैतन्य-मात्रेण संयोगात् चेतना भवेत्
अर्थात् अर्थांतरे वृत्तिर् गंतुं चलति चांतरे

७ चित्तं चित् इति जानीयात् तकार-रहितं यदा
तकारो विषयाध्यासो जपा-रागो यथा मणौ

८ ज्ञेयवस्तु-परित्यागात् ज्ञानं तिष्ठति केवलम्
त्रिपुटी क्षीणतां एति ब्रह्म-निर्वाण मृच्छति

९ मनोमात्रं इदं सर्वं तत् मनो ज्ञानमात्रकम्
अज्ञानं भ्रम इत्याहुर् विज्ञानं परमं पदम्

१० अज्ञान-ध्वंसकं ज्ञानं विज्ञानं चोभयात्मकम्
ज्ञानविज्ञान-निष्ठेयं तत्सद्ब्रह्मणि चार्पणम्

[सदाचारानुसंधानम्]

: ३ : ज्ञान-निष्ठा कर्तव्या

१ बीजान्यग्नि-प्रदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः
ज्ञान-दग्धैस् तथा क्लेशैर् नात्मा संपद्यते पुनः

२ तस्मात् मुमुक्षोः कर्तव्या ज्ञान-निष्ठा प्रयत्नतः
निःशेष-वासना-क्षत्यै विपरीत-निवृत्तये

३ ज्ञाननिष्ठा-तत्परस्य नैव कर्मोपयुज्यते
कर्मणो ज्ञान-निष्ठाया न सिध्यति सहास्थितिः

४ परस्पर-विरुद्धत्वात् तयोर् भिन्न-स्वभावयोः
कर्तृत्व-भावनापूर्वं कर्म, ज्ञानं विलक्षणम्

५ ज्ञानैकनिष्ठा-निरतस्य भिक्षोर्, नैवावकाशोऽस्ति हि कर्म-तंत्रे
तदेव कर्मास्य तदेव संध्या, तदेव सर्वं न ततोऽन्यदस्ति

६ बुद्धिकल्पित-मालिन्य-क्षालनं स्नानमात्मनः
तेनैव शुद्धिर् एतस्य न मृदा न जलेन च

७ विनिषिध्याखिलं दृश्यं, स्व-स्वरूपेण या स्थितिः
सा संध्या, तत् अनुष्ठानं, तत् दानं, तत् हि भोजनम्

८ विज्ञात-परमार्थानां शुद्धसत्त्वात्मनां सताम्
यतीनां किं अनुष्ठानं स्वानुसंधिं विना परम्

९ तस्मात् क्रियान्तरं त्यक्त्वा ज्ञाननिष्ठा-परो यतिः
सदात्म-निष्ठया तिष्ठेत् निश्चलस् तत्-परायणः

[सर्ववेदांत-सिद्धांतसार-संग्रहः]

:४: अ-नियोज्योऽहम्

१ त्वं कुरु त्वं तदेवेति प्रत्ययौ एककालिकौ
एकनीडौ कथं स्यातां विरुद्धौ न्यायतो वद

२ दृशेश् छाया यदाऽऽरूढा मुख-च्छायेव दर्शने
पश्यन् तं प्रत्ययं योगी "दृष्ट आत्मेति" मन्यते

३ देहात्मबुध्यपेक्षत्वात् आत्मनः कर्तृता मृषा
नैव किंचित् करोमीति सत्या बुद्धिः प्रमाण-जा

४ कर्तृत्वं कारकापेक्षं अकर्तृत्वं स्वभावतः
कर्ता भोक्तेति विज्ञानं मृषैवेति सुनिश्चितम्

५ एवं शास्त्रानुमानाभ्यां स्वरूपे ऽवगते सति
नियोज्यो ऽहं इति ह्येषा सत्या बुद्धिः कथं भवेत्

[उपदेश-साहस्री]

:५: सेतुः सर्व-व्यवस्थानाम्

१ आत्माग्नेर् इंधना बुद्धिर् अविद्या-काम-कर्मभिः
दीपिता प्रज्वल-त्येषा द्वारैः श्रोत्रादिभिः सदा

२ आत्म-बुद्धि-मनश्-चक्षुर्-विषयालोक-संगमात्
विचित्रो जायते बुद्धेः प्रत्ययो ऽज्ञान-लक्षणः

३ विविच्या-स्मात् स्व-मात्मानं विद्यात् शुद्धं परं पदम्
द्रष्टारं सर्वभूत-स्थं समं सर्व-भयातिगम्

४ सेतुं सर्व-व्यवस्थानां अहोरात्रादि-वर्जितम्
तिर्यक् ऊर्ध्वं अधः सर्वं सकृत् ज्योतिर् अनामयम्

५ धर्माधर्म-विनिर्मुक्तं भूत-भव्यात् कृताकृतात्
स्वं आत्मानं परं विद्याद् विमुक्तं सर्वबंधनैः

[उपदेश-साहस्री]

:६: मनो हि अविद्या

१ न ह्यस्त्य विद्या मनसो ऽतिरिक्ता
मनो ह्यविद्या भवबंध-हेतुः
तस्मिन् विनष्टे सकलं विनष्टं
विजृंभिते ऽस्मिन् सकलं विजृंभते

२ स्वप्ने ऽथ शून्ये सृजति स्व-शक्त्या
भोक्त्रादि विश्वं मन एव सर्वम्
तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषस्
तत् सर्व मेतत् मनसो विजृंभणम्

३ सुषुप्ति-काले मनसि प्रलीने
नैवास्ति किंचित् सकल-प्रसिद्धेः
अतो मनः-कल्पित एव पुंसः
संसार एतस्य न वस्तुतो ऽस्ति

४ वायुनाऽऽनीयते मेघः पुनस् तेनव नीयते
मनसा कल्प्यते बंधो मोक्षस् तेनैव कल्प्यते

५ देहादि-सर्वविषये परिकल्प्य रागं
बध्नाति तेन पुरुषं पशुवद् गुणेन
वैरस्य मत्र विषवत्सु विधाय पश्चात्
एनं विमोचयति तत् मन एव बंधात्

६ तस्मात् मनः कारण-मस्य जंतोर्
बंधस्य मोक्षस्य च वा विधाने
बंधस्य हेतुर् मलिनं रजोगुणैर्
मोक्षस्य शुद्धं वि-रजस्तमस्कम्

७ विवेक-वैराग्य-गुणातिरेकात्
शुद्धत्व-मासाद्य मनो विमुक्त्यै
भवत्यतो बुद्धिमतो मुमुक्षोस्
ताभ्यां दृढाभ्यां भवितव्य-मग्रे

८ मनः प्रसूते विषयान् अशेषान्
स्थूलात्मना सूक्ष्मतया च भोक्तुः
शरीर-वर्णाश्रम-जाति-भेदान्
गुण-क्रिया-हेतु-फलानि नित्यम्

९ असंग-चिद्रूप-ममुं विमोह्य
देहेंद्रिय-प्राण-गुणैर् निबध्य
अहं-ममेति भ्रमयत्य-जस्रं
मनः स्व-कृत्येषु फलोपभुक्तिषु

१० अध्यास-दोषात् पुरुषस्य संसृतिर्
अध्यास-बंधस् त्वमुनैव कल्पितः
रजस्तमो-दोषवतो ऽविवेकिनो
जन्मादि-दुःखस्य निदान मेतत्

११ तत् मनः-शोधनं कार्यं प्रयत्नेन मुमुक्षुणा
विशुद्धे सति चैतस्मिन् मुक्तिः कर-फलायते

[विवेक-चूडामणिः]

:७: मनसः शोधनम्

१ विक्षेप-शक्ती रजसः क्रियात्मिका
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी
रागादयो ऽस्याः प्रभवन्ति नित्यं
दुःखादयो ये मनसो विकाराः

२ कामः क्रोधो लोभ-दंभाद्यसूया
ऽहंकारेर्ष्या-मत्सराद्यास् तु घोराः
धर्मा एते राजसाः पुं-प्रवृत्तिर्
यस्मात् एषा, तत् रजो बंध-हेतुः

३ एषाऽऽवृतिर् नाम तमोगुणस्य
शक्तिर्, यया वस्तु अवभासते ऽन्यथा
सैषा निदानं पुरुषस्य संसृतेर्
विक्षेप-शक्तेः प्रसरस्य हेतुः

४ प्रज्ञावानपि पंडितोऽपि चतुरोऽप्यत्यंत-सूक्ष्मात्म-दृग्
व्यालीढस् तमसा न वेत्ति बहुधा संबोधितोऽपि स्फुटम्
भ्रांत्या रोपितमेव साधु कलयत्या लंबते तद्-गुणान्
हंतासौ प्रबला दुरंत-तमसः शक्तिर् महत्या वृतिः

५ अ-भावना वा विपरीत-भावना
संभावना विप्रतिपत्ति रस्याः
संसर्ग-युक्त न विमुंचति ध्रुवं
विक्षेप-शक्तिः क्षपयत्य जस्रम्

६ अज्ञान मालस्य-जडत्व-निद्रा-
प्रमाद्-मूढत्व-मुखास् तमो-गुणाः
एतैः प्रयुक्तो नहि वेत्ति किंचित्
निद्रालुवत् स्तंभवदेव तिष्ठति

७ सत्त्वं विशुद्धं जलवत् तथापि
ताभ्यां मिलित्वा शरणाय कल्पते
यत्रा त्म-बिंबः प्रतिबिंबितः सन्
प्रकाशय त्यर्क इवा खिलं जडम्

८ मिश्रस्य सत्त्वस्य भवंति धर्मास्
त्वमानिताद्या नियमा यमाद्याः
श्रद्धा च भक्तिश्च मुमुक्षुता च
दैवी च संपत्ति रसन्-निवृत्तिः

२ विशुद्ध-सत्त्वस्य गुणाः प्रसादः
स्वात्मानुभूतिः परमा प्रशांतिः
तृप्तिः प्रहर्षः परमात्म-निष्ठा
यथा सदानंद-रसं समृच्छति

[विवेक-चूडामणिः]

ः८ः मनःसंबोधनम्

१ अहं-ममेति त्वमनर्थमीहसे
परार्थमिच्छंति तवान्य ईहितम्
न ते ऽर्थ-बोधो न हि मे ऽस्ति चार्थिता
ततश्च युक्तः शम एव ते मनः !

२ यतो न चान्यः परमात् सनातनात्
सदैव तृप्तो ऽहमतो न मे ऽर्थिता
सदैव तृप्तश्च न कामये हि तं
यतस्व चेतः प्रशमाय ते हितम्

३ त्वयि प्रशान्ते नहि चास्ति भेद-धीर्
यतो जगत् मोहमुपैति मायया
ग्रहो हि माया-प्रभवस्य कारणं
ग्रहात् विमोके नहि सास्ति कस्यचित्

४ न मे ऽस्ति मोहस् तव चेष्टितेन हि
प्रबुद्ध-तत्त्वस् त्वसितो ह्यविक्रियः
न पूर्वतत्त्वोत्तरभेदता हि नो
वृथैव तस्माच्च मनस् तवे हितम्

५ अभावरूपं त्वमसीह हे मनो
निरीक्ष्यमाणे न हि युक्तितो ऽस्तिता
सतो ह्यनाशात् असतो ऽप्यजन्मतो
द्वयं च चेतस् तव नास्तिते ष्यते

६ चितिः स्व-रूपं स्वत एव मे मतं
रसादि-योगस् तव मोह-कारितः
अतो न किंचित् तव चेष्टितेन मे
फलं भवेत् सर्व-विशेष-हान-तः

७ सदा च भूतेषु समो ऽस्मि केवलो
यथा च खं सर्वग मक्षरं शिवम्
निरंतरं निष्कल माक्रियं परं
ततो न म स्तीह फलं तवे हितैः

८ अहं ममैको न मदन्य दिष्यते
तथा न कस्या प्यहम स्म्य संग-तः
असंगरूपो ऽह मतो न मे त्वया
कृतेन कार्यं तव चाद्वयत्व-तः

९ दृशि-स्वरूपं गगनोपमं परं
सकृद्-विभातं त्वज मेक मक्षरम्
अ-लेपकं सर्व-गतं यद् द्वयं
तदेव चाहं सततं विमुक्तः

१० दृशिस्तु शुद्धो ऽह मविक्रियात्मको
न मे ऽस्ति कश्चिद् विषयः स्वभावतः
पुरस् तिरश् चोर्ध्व मधश् च सर्वतः
संपूर्ण-भूमा त्वज आत्मनि स्थितः

११ सुषुप्त-जाग्रत्-स्वपतश्च दर्शनं
न मे ऽस्ति किंचित् तु मतेर् हि मोहनम्
स्वतश्च तेषां परतो ऽप्यसत्त्व-तस्
तुरीय एवास्मि सदा दृग् द्वयः

[उपदेश-साहस्री]

:९: मनसः साक्षी

१ सर्वेषां मनसो वृत्तं अविशेषेण पश्यतः
तस्य मे निर्विकारस्य विशेषः स्यात् कथंचन

२ मनो-वृत्तं मनश् चैव स्वप्नवत् जाग्रती क्षितुः
संप्रसादे द्वयासत्त्वात् चिन्मात्रः सर्वगो ऽव्ययः

३ जिघत्सा वा पिपासा वा शोक-मोहौ जरा-मृती
न विद्यंते ऽशरीरत्वात् व्योमवत् व्यापिनो मम

४ विक्षेपो नास्ति तस्मात् मे न समाधिस् ततो मम
विक्षेपो वा समाधिर् वा मनसः स्यात् विकारिणः

५ चिन्मात्र-ज्योतिषा सर्वाः सर्व-देहेषु बुद्धयः
मया यस्मात् प्रकाश्यंते सर्वस्या ऽऽत्मा ततो ह्यहम्

६ अ-समाधिं न पश्यामि निर्विकारस्य सर्वदा
ब्रह्मणो मे विशुद्धस्य शोध्यं नान्यत् वि-पाप्मनः

७ यथा ह्यन्य-शरीरेषु ममा ऽऽहंतां न चेष्यते
अस्मिन् चापि तथा देहे धी-साक्षित्वाविशेषतः

८ भा-रूपत्वात् यथा भानोर् नाहोरात्रे, तथैव च
ज्ञानाज्ञाने न मे स्यातां चिद्रूपत्वाविशेषतः

९ राजवत् साक्षिमात्रत्वात्, सांनिध्याद् भ्रामको यथा
भ्रामयन् जगदा ऽऽत्मा ऽहं निष्क्रियो ऽकारको ऽद्वयः

:१०: मानसं तीर्थम्

१ परलोक-भयं यस्य नास्ति मृत्यु-भयं तथा
तस्या त्मज्ञस्य शोच्याः स्युः स-ब्रह्मेंद्रा अपी श्वराः

२ ईश्वरत्वेन किं तस्य ब्रह्मेंद्रत्वेन वा पुनः
तृष्णा चेत् सर्वतश् छिन्ना सर्वदैन्योद्भवा ऽशुभा

३ अह मित्यात्म-धीर् या च ममे त्यात्मीय-धीरपि
अर्थ-शून्ये यदा यस्य स आत्म-ज्ञो भवेत् तदा

४ वासुदेवो यथा ऽश्वत्थे स्व-देहे चाब्रवीत् समम्
तद्वत् वेत्ति य आत्मानं समं स ब्रह्मवित्तमः

५ यस्मिन् देवाश्च वेदाश्च पवित्रं कृत्स्न मेकताम्
व्रजेत् तत् मानसं तीर्थं यस्मिन् स्नात्वा ऽमृतो भवेत्

[उपदेश-साहस्री]

:११: जीवन्मुक्तानंदलहरी

१ पुरे पौरान् पश्यन् नर-युवति-नामाकृति-मयान्
सुवेषान् स्वर्णालंकरण-कलितान् चित्र-सदृशान्
स्वयं साक्षी द्रष्टेत्यपि च कलयन् तैः सह रमन्
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

२ वने वृक्षान् पश्यन् दलभरभरान् नम्र-सुशिखान्
घनच्छाया-च्छन्नान् बहुल-कलकूजद्-द्विज-गणान्
भजन् घस्रे रात्रौ अवनितल-तल्पैकशयनो
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

३ कदाचित् प्रासादे क्वचिदपि च सौधे च धवले
कदाकाले शैले क्वचिदपि च कूलेषु सरिताम्
कुटीरे दान्तानां मुनिजन-वराणां अपि वसन्
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

४ कदाचित् मौनस्थः क्वचिदपि च वाग्वाद-निरतः
कदाचित् स्वानंदे हसति रभसा त्यक्त-वचसा
कदाचित् लोकानां व्यवहृति-समालोकन-परो
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

५ क्वचित् शैवैः सार्धं क्वचिदपि च शाक्तैः सह रमन्
कदा विष्णोर् भक्तैः क्वचिदपि च सौरैः सह वसन्
कदाचित् गाणेशैर् गत-सकलभेदो ऽद्वयतया
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

६ निराकारं क्वापि क्वचिदपि च साकारममलं
निजं शैवं रूपं विविध-गुण-भेदेन बहुधा
कदाश्चर्यं पश्यन् किमिदमिति हृष्यन्नपि कदा
मुनिर् न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षा-क्षत-तमाः

[जीवन्मुक्तानंदलहरी]

:१२: द्वादशी

१ आत्मानात्म-प्रतीतिः प्रथम मभिहिता सत्यमिथ्यात्व-योगात्
द्वेधा ब्रह्म-प्रतीतिर् निगम-निगदिता स्वानुभूत्यो पपत्त्या
आद्या देहानुबंधात् भवति तदपरा सा च सर्वात्मकत्वात्
आदौ 'ब्रह्माहमस्मी' त्यनुभव उदिते 'खल्विदं ब्रह्म' पश्चात्

२ आत्मांभोधेस् तरंगो ऽस्म्यहमिति गमने भावयन्, आसन-स्थः
संवित्सूत्रानुविद्धो मणिरहमिति, वास्मींद्रियार्थ-प्रतीतौ
दृष्टो ऽस्म्या त्मावलोकात् इति, शयन-विधौ मग्न आनंद-सिंधौ,
अंतर् निष्ठो मुमुक्षुः स खलु तनु-भृतां यो नयत्येव मायुः

३ नैर्वेदं ज्ञान-गर्भं द्विविध मभिहितं तत्र वैराग्य माद्यं
प्रायो दुःखावलोकात् भवति गृह-सुहृत्-पुत्र-वित्तैषणादेः
अन्यत् ज्ञानोपदेशात् यदुदित-विषये वान्तवत् हेयता स्यात्
प्रव्रज्या ऽपि द्विधा स्यात् नियमित-मनसां देहतो गेहतश् च

४ तिष्ठन् गेहे गृहेशो ऽप्यतिथिरिव निजं धाम गंतुं चिकीर्षुः
देहस्थं दुःख-सौख्यं न भजति सहसा निर्ममत्वाभिमानः
आयात्रा यास्यतीदं जलद-पटल-वत् यातृ यास्यत्य वश्यं
देहाद्यं सर्वमेव, प्रविदित-विषयो यश्च तिष्ठ त्ययत्नः

५ नोऽकस्मात् आर्द्र मेधः स्पृशति च दहनः किंतु शुष्कं निदाघात्
आर्द्रं चेतो ऽनुबंधैः कृत-सुकृत मपि स्वोक्त-कर्म-प्रजार्थैः
तद्वत् ज्ञानाग्नि रेतत् स्पृशति न सहसा किंतु वैराग्य-शुष्कं
तस्मात् शुद्धो विरागः प्रथम मभिहितस् तेन विज्ञान-सिद्धिः

६ प्रापश्यत् विश्व मात्मेत्यय मिह पुरुषः शोक-मोहाद्यतीतः
शुक्रं ब्रह्मा ध्यगच्छत् स खलु सकलवित् सर्वसिध्यास्पदं हि
विस्मृत्य स्थूल-सूक्ष्म-प्रभृति-वपु रसौ सर्वसंकल्प-शून्यो
जीवन्-मुक्तस् तुरीयं पद मधिगतवान् पुण्य-पापैर् विहीनः

७ पिंडीभूतं यदंतर् जलनिधि-सलिलं याति तत् सैंधवाख्यं
भूयः प्रक्षिप्त मास्मिन् विलय मुपगतं नाम-रूपे जहाति
प्राज्ञस् तद्वत् परात्मन्य थ भजति लयं तस्य चेतो हिमांशौ,
वाक् अग्नौ, चक्षु रर्के, पयसि पुन रसृग्-रेतसी, दिक्षु कर्णौ,

८ यत्राकाशावकाशः कलयति च कलामात्रतां यत्र कालो
यत्रैवा शावसानं बृहदिह हि विराट् पूर्व मर्वाग् इवास्ते
सूत्रं यत्रा विरासीत् महदपि महतस् तद् हि पूर्णात् च पूर्णं
संपूर्णात् अर्णवादे रपि भवति यथा पूर्ण मेकार्णवांभः

९ अंतः सर्वौषधीनां पृथ गामित-रसैर् गंध-वीर्यैर् विपाकैर्
एकं पाथोद्-पाथः परिणमति यथा तद्वदेवा न्तरात्मा
नाना-भूत-स्वभावैर्, वहति वसुमती येन विश्वं, पयोदो
वर्षत्युच्चैर्, हुताशः पचति दहति वा येन सर्वांतरोऽसौ

१० दृष्टः साक्षात् इदानीं इह खलु जगतां ईश्वरः संविदात्मा
विज्ञान-स्थाणु रेको गगनवद् भितः सर्वभूतांतरात्मा
दृष्टं ब्रह्मातिरिक्तं सकल मिद मसद्रूप माभास-मात्रं
शुद्धं ब्रह्माह मस्मीत्य विरत मधुनाऽत्रैव तिष्ठेत् अनीहः

११ तद् ब्रह्मैवाह मस्मी त्यनुभव उदितो यस्य कस्यापि चेत् वै
पुंसः श्रीसद्गुरूणां अतुलित-करुणापूर्ण-पीयूष-दृष्टया
जीवन्मुक्तः स एव भ्रम-विधुर-मना निर्गते ऽनाद्युपाधौ
नित्यानंदैकधाम प्रविशति परमं नष्ट-संदेह-वृत्तिः

१२ कंचित् कालं स्थितः कौ पुन रिह भजते नैव देहादि-संघं
यावत् प्रारब्ध-भोगं कथमपि स सुखं चेष्टते ऽसंग-बुध्द्या
निर्द्वंद्वो नित्यशुद्धो विगलित-ममताहंकृतिर् नित्यतृप्तो
ब्रह्मानंदस्वरूपः स्थिरमति रचलो निर्गताशेषमोहः

[शत-श्लोकी]

अपरोक्षानुभूतिः

प्रकरणानि

I पूर्वार्धः, ब्रह्म-विद्या

१	साधन-चतुष्टयम्	१–९	९
२	विचारः	१०–१५	६
३	आत्मानात्मनोः पार्थक्यम्	१६–२७	१२
४	आत्मनात्म-विभागो मिथ्या	२८–४०	१३
५	दृष्टांत-संग्रहः	४१–४८	८
६	प्रारब्ध-निरासः	४९–५५	७

II उत्तरार्धः, योगविधिः

७	त्रिपंचांगानि	५६–८०	२५
८	समाधेर् विघ्नाः	८१–८४	४
९	ब्रह्म-वृत्तिः	८५–९०	६
१०	अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां ब्रह्म-भावना	९१–१००	१०
			१००

—[अपरोक्षानुभूतितः]

I पूर्वार्धः, ब्रह्म-विद्या

:१: साधन-चतुष्टयम्

१ श्रीहरिं परमानंदं उपदेष्टार मीश्वरम्
व्यापकं सर्व-लोकानां कारणं तं नमाम्य हम्

२ अपरोक्षानुभूतिर् वै प्रोच्यते मोक्ष-सिद्धये
सद्भिर् एषा प्रयत्नेन वीक्षणीया मुहुर् मुहुः

३ स्व-वर्णाश्रम-धर्मेण तपसा हरि-तोषणात्
साधनं प्रभवेत् पुंसां वैराग्यादि-चतुष्टयम्

४ ब्रह्मादि-स्थावरांतेषु वैराग्यं विषयेष्व नु
यथैव काक-विष्ठायां वैराग्यं तद् हि निर्मलम्

५ नित्यं आत्म-स्वरूपं हि, दृश्यं तद्-विपरीतगम्
एवं यो निश्चयः सम्यक्, विवेको वस्तुनः स वै

६ सदैव वासना-त्यागः शमो ऽयं इति शब्दितः
निग्रहो बाह्य-वृत्तीनां दम इत्यभिधीयते

७ विषयेभ्यः परावृत्तिः परमोपरतिर् हि सा
सहनं सर्व-दुःखानां तितिक्षा सा शुभा मता

८ निगमाचार्य-वाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता
चित्तैकाग्र्यं तु सल्-लक्ष्ये समाधानं इति स्मृतम्

९ संसारबंध-निर्मुक्तिः कथं मे स्यात् कदा विभो
इति या सुदृढा बुद्धिर् वक्तव्या सा मुमुक्षुता

:२: विचारः

१० उक्त-साधन-युक्तेन विचारः पुरुषेण हि
कर्तव्यो ज्ञान-सिध्यर्थं आत्मनः शुभ मिच्छता

११ नोत्पद्यते विना ज्ञानं विचारेणा न्य-साधनैः
यथा पदार्थ-भानं हि प्रकाशेन विना क्वचित्

१२ कोऽहं कथ मिदं जातं को वा कर्ता ऽस्य विद्यते
उपादानं किमस्तीह, विचारः सो ऽय मीदृशः

१३ नाहं भूत-गणो देहः, नाहं चाक्ष-गणस् तथा
एतद्-विलक्षणः कश्चित्, विचारः सो ऽय मीदृशः

१४ अज्ञान-प्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते
संकल्पो विविधः कर्ता, विचारः सो ऽय मीदृशः

१५ एतयोर् यत् उपादानं एकं सूक्ष्मं सद व्ययम्
यथैव मृद् घटादीनां, विचारः सो ऽय मीदृशः

ग्रंथ संग्रहालय, ठाणे. स्थलक्रमांक
वि: १५५
अनुक्रम ....
नों दि: ....

:३: आत्मानात्मनोः पार्थक्यम्

१६ आत्मा विनिष्कलो ह्येकः, देहो बहुभि-रावृतः
तयोर् ऐक्यं प्रपश्यंति, किं अज्ञानं अतः परम्

१७ आत्मा नियामकश् चान्तः, देहो बाह्यो नियम्यकः
तयोर् ऐक्यं प्रपश्यंति, किं अज्ञानं अतः परम्

१८ आत्मा प्रकाशकः स्वच्छः, देहस् तामस उच्यते
तयोर् ऐक्यं प्रपश्यंति, किं अज्ञानं अतः परम्

१९ आत्मा नित्यो हि सद्रूपः, देहोऽनित्यो ह्यसन्मयः
तयोर् ऐक्यं प्रपश्यंति, किं अज्ञानं अतः परम्

२० 'देहोऽहं' इत्ययं मूढो मत्वा तिष्ठ-त्यहो जनः
'ममा-यं' इत्यपि ज्ञात्वा घट-द्रष्टेव सर्वदा

२१ ब्रह्मैवाहं समः शांतः सच्चिदानंद-लक्षणः
नाहं देहो ह्यसद्रूपः, ज्ञानं इत्युच्यते बुधैः

२२ निर्विकारो निराकारो निरवद्यो ऽह-मव्ययः
नाहं देहो ह्यसद्रूपः, ज्ञानं इत्युच्यते बुधैः

२३ निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो नित्य-मुक्तो ऽह-मच्युतः
नाहं देहो ह्यसद्रूपः, ज्ञानं इत्युच्यते बुधैः

२४ निर्मलो निश्चलो ऽनंतः शुद्धो ऽहं अजरो ऽमरः
नाहं देहो ह्यसद्रूपः, ज्ञानं इत्युच्यते बुधैः

२५ स्व-देहे शोभनं संतं पुरुषाख्यं च संमतम्
किं मूर्ख शून्यं आत्मानं देहातीतं करोषि भो

२६ अहं द्रष्टृतया सिद्धः, देहो दृश्यतया स्थितः
ममायं इति निर्देशात्, कथं स्यात् देहकः पुमान् ?

२७ अहं विकारहीनस्तु, देहो नित्यं विकारवान्
इति प्रतीयते साक्षात्, कथं स्यात् देहकः पुमान् ?

:४: आत्मानात्म-विभागो मिथ्या

२८ चैतन्यस्यै-करूपत्वात् भेदो युक्तो न कर्हिचित्
जीवत्वं च मृषा ज्ञेयं रज्जौ सर्प-ग्रहो यथा

२९ रज्ज्वज्ञानात् क्षणेनैव यद्वत् रज्जुर् हि सर्पिणी
भाति तद्वत् चितिः साक्षात् विश्वाकारेण केवला

३० व्याप्य-व्यापक-ता मिथ्या सर्वं आत्मेति शासनात्
इति ज्ञाते परे तत्त्वे भेदस्यावसरः कुतः ?

३१ ब्रह्मणः सर्व-भूतानि जायंते परमात्मनः
तस्मात् एतानि ब्रह्मैव भवंती-त्यवधारयेत्

३२ ब्रह्मैव सर्व-नामानि रूपाणि विविधानि च
कर्माण्यपि समग्राणि बिभर्तीति श्रुतिर् जगौ

३३ सुवर्णात् जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम्
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत्

३४ स्वल्पमप्यंतरं कृत्वा जीवात्म-परमात्मनोः
यो ऽवतिष्ठति मूढात्मा भयं तस्याभिभाषितम्

३५ अनुभूतो ऽप्ययं लोको व्यवहार-क्षमो ऽपि सन्
असद्रूपो यथा स्वप्नः, उत्तरक्षण-बाध-तः

३६ स्वप्नो जागरणे ऽलीकः, स्वप्ने ऽपि न हि जागरः
द्वयमेव लये नास्ति, लयो ऽपि ह्युभयोर् न च

३७ त्रयं एवं भवेत् मिथ्या गुणत्रय-विनिर्मितम्
अस्य द्रष्टा गुणातीतो नित्यो ह्येकश् चिदात्मकः

३८ सर्वो ऽपि व्यवहारम् तु ब्रह्मणा क्रियते जनैः
अज्ञानात् न विजानंति मृदेव हि घटादिकम्

३९ गृह्यमाणे घटे यद्वत् मृत्तिका भाति वै बलात्
वीक्ष्यमाणे प्रपंचे ऽपि ब्रह्मैवाभाति भासुरम्

४० यथैव मृन्मयः कुंभस् तद्वत् देहो ऽपि चिन्मयः
आत्मानात्म-विभागो ऽयं मुधैव क्रियते ऽबुधैः

:५: दृष्टांत-संग्रहः

४१ सर्पत्वेन यथा रज्जुः, रजतत्वेन शुक्तिका
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथाऽऽत्मता

४२ कनकं कुंडलत्वेन, तरंगत्वेन वै जलम्
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथाऽऽत्मता

४३ गृहत्वेनेव काष्ठानि, खड्गत्वेनेव लोहता
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथाऽऽत्मता

४४ यथा वृक्ष-विपर्यासो जलात् भवति कस्यचित्
तद्वत् आत्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञान-योगतः

४५ पोतेन गच्छतः पुंसः सर्वं भातीव चंचलम्
तद्वत् आत्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञान-योगतः

४६ अलातं भ्रमणेनैव वर्तुलं भाति सूर्यवत्
तद्वत् आत्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञान-योगतः

४७ महत्त्वे सर्व-वस्तूनां अणुत्वं ह्यतिदूरतः
तद्वत् आत्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञान-योगतः

४८ अभ्रेषु सत्सु धावत्सु सोमो धावति भाति वै
तद्वत् आत्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञान-योगतः

:६: प्रारब्ध-निरासः

४९ एवं आत्मान्यविद्यातो देहाध्यासो हि जायते
स एवात्मा परिज्ञातो लीयते च परात्मनि

५० आत्मानं सततं जानन् कालं नय महा-मते
प्रारब्धं अखिलं भुंजन् नोद्वेगं कर्तुमर्हसि

५१ उत्पन्नेऽप्यात्म-विज्ञाने प्रारब्धं नैव मुंचति
इति यत् श्रूयते शास्त्रे तत् निराक्रियतेऽधुना

५२ तत्त्वज्ञानोदयात् ऊर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते
देहादीनां असत्यत्वात् यथा स्वप्नो विबोधतः

५३ कर्म जन्मान्तर-कृतं प्रारब्धं इति कीर्तितम्
तत् तु जन्मान्तराभावात् पुंसो नैवास्ति कर्हिचित्

५४ स्वप्न-देहो यथा ऽध्यस्तः, तथैवायं हि देहकः
अध्यस्तस्य कुतो जन्म जन्माभावे हि तत् कुतः

५५ देहस्यापि प्रपंचत्वात् प्रारब्धावस्थितिः कुतः
अज्ञानि-जन-बोधार्थं प्रारब्धं वक्ति वै श्रुतिः

II उत्तरार्धः, योगविधिः

:७: त्रिपंचांगानि

५६ त्रिपंचांगान्यथो वक्ष्ये पूर्वोक्तस्य हि लब्धये
तैश्च सर्वैः सदा कार्यं निदिध्यासनमेव तु

५७ नित्याभ्यासात् ऋते प्राप्तिर् न भवेत् सच्चिदात्मनः
तस्मात् ब्रह्म निदिध्यासेत् जिज्ञासुः श्रेयसे चिरम्

५८ यमो हि नियमस् त्यागः मौनं देशश्च कालतः
आसनं मूलबंधश्च देह-साम्यं च दृक्-स्थितिः

५९ प्राण-संयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा
आत्म-ध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यंगानि वै क्रमात्

६० सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानात् इंद्रियग्राम-संयमः
यमोऽयं इति संप्रोक्तो ऽभ्यसनीयो मुहुर् मुहुः

६१ सजातीय-प्रवाहश्च विजातीय-तिरस्कृतिः
नियमो हि परानंदो नियमात् क्रियते बुधैः

६२ त्यागः प्रपंचरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात्
त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयो यतः

६३ यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह
यत् मौनं योगिभिर् गम्यं तद् भजेत् सर्वदा बुधः

६४ वाचो यस्मात् निवर्तंते तद् वक्तुं केन शक्यते
प्रपंचो यदि वक्तव्यः सो ऽपि शब्द-विवर्जितः

६५ इति वा तद् भवेत् मौनं सतां सहज-संज्ञितम्
गिरा मौनं तु बालानां प्रयुक्तं ब्रह्म-वादिभिः

६६ आदौ अंते च मध्ये च जनो यस्मिन् न विद्यते
येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः

६७ कलनात् सर्व-भूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः
काल-शब्देन निर्दिष्टो ह्यखंडानंद अद्वयः

६८ सुखेनैव भवेत् यस्मिन् अजस्रं ब्रह्म-चिंतनम्
आसनं तत् विजानीयात् नेतरत् सुख-नाशनम्

६९ सिद्धं यत् सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठान-मव्ययम्
यस्मिन् सिद्धाः समाविष्टास् तद् वै सिद्धासनं विदुः

७० यत् मूलं सर्व-भूतानां यत् मूलं चित्त-बंधनम्
मूल-बंधः सदा सेव्यो योगो ऽसौ राज-योगिनाम्

७१ अंगानां समतां विद्यात् समे ब्रह्मणि लीयते
नो चेत् नैव समानत्वं ऋजुत्वं शुष्क-वृक्षवत्

७२ दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येत् ब्रह्ममयं जगत्
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी

७३ द्रष्टृ-दर्शन-दृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत्
दृष्टिस् तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी

७४ चित्तादि-सर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात्
निरोधः सर्व-वृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते

७५ निषेधनं प्रपंचस्य रेचकाख्यः समीरणः
ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरीरितः

७६ ततस् तद्वृत्ति-नैश्चल्यं कुंभकः प्राण-संयमः
अयं चापि प्रबुद्धानां अज्ञानां घ्राण-पीडनम्

७७ विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश् चिति मज्जनम्
प्रत्याहारः स विज्ञेयो ऽभ्यसनीयो मुमुक्षुभिः

७८ यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस् तत्र दर्शनात्
मनसो धारणं चैव धारणा सा परा मता

७९ ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालंबतया स्थितिः
ध्यान-शब्देन विख्याता परमानंद-दायिनी

८० निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः
वृत्ति-विस्मरणं सम्यक् समाधिर् ज्ञान-संज्ञकः

: ८ : समाधेर् विघ्नाः

८१ एवं अकृत्रिमानंदं तावत् साधु समभ्यसेत्
वश्यो यावत् क्षणात् पुंसः प्रयुक्तः संभवेत् स्वयम्

८२ ततः साधन-निर्मुक्तः सिद्धो भवति योगि-राट्
तत्-स्वरूपं न चैकस्य विषयो मनसो गिराम्

८३ समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना आयांति वै बलात्
अनुसंधान-राहित्यं आलस्यं भोग-लालसम्

८४ लयस् तमश्च विक्षेपो रसास्वादश्च शून्यता
एवं यद् विघ्न-बाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्म-विदा शनैः

:९: ब्रह्म-वृत्तिः

८५ भाव-वृत्त्या हि भावत्वं शून्य-वृत्त्या हि शून्यता
पूर्ण-वृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्व-मभ्यसेत्

८६ ये हि वृत्तिं जह-त्येनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम्
वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः

८७ ये हि वृत्तिं विजानंति ये ज्ञात्वा वर्धयन्त्यपि
ये वै सत्-पुरुषा धन्या वंद्यास् ते भुवन-त्रये

८८ येषां वृत्तिः समावृद्धा परिपक्वा च सा पुनः
ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्द-वादिनः

८९ कुशला ब्रह्म-वार्तायां वृत्ति-हीनाः सु-रागिणः
ते ह्यज्ञानि-तमा नूनं पुनरायांति यांति च

९० निमेषार्धं न तिष्ठंति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना
यथा तिष्ठंति ब्रह्माद्याः सनकाद्या शुकादयः

:१०: अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां ब्रह्म-भावना

९१ कार्ये कारणताऽऽयाता कारणे न हि कार्यता
कारणत्वं ततो गच्छेत् कार्याभावे विचारतः

९२ अथ शुद्धं भवेत् वस्तु यद् वै वाचां अगोचरम्
द्रष्टव्यं मृद्-घटेनैव दृष्टांतेन पुनः पुनः

९३ अनेनैव प्रकारेण वृत्तिर् ब्रह्मात्मिका भवेत्
उदेति शुद्ध-चित्तानां वृत्ति-ज्ञानं ततः परम्

९४ कारणं व्यतिरेकेण पुमान् आदौ विलोकयेत्
अन्वयेन पुनस् तद् हि कार्ये नित्यं प्रपश्यति

९५ कार्ये हि कारणं पश्येत् पश्चात् कार्यं विसर्जयेत्
कारणत्वं ततो नश्येत् अवशिष्टं भवेत् मुनिः

९६ भावितं तीव्र-वेगेन वस्तु यत् निश्चयात्मना
पुमान् तद् हि भवेत् शीघ्रं ज्ञेयं भ्रमर-कीटवत्

९७ अदृश्यं भावरूपं च सर्वं एतत् चिदात्मकम्
सावधानतया नित्यं स्वात्मानं भावयेत् बुधः

९८ दृश्यं अदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिंतयेत्
विद्वान् नित्यसुखे तिष्ठेत् धिया चिद्रस-पूर्णया

९९ एभिर् अंगैः समायुक्तो राजयोग उदाहृतः
किंचित्-पक्व-कषायाणां हठयोगेन संयुतः

१०० परिपक्वं मनो येषां केवलो ऽयं च सिद्धिदः
गुरु-दैवत-भक्तानां सर्वेषां सुलभो जवात्

विवेक-चूडामणिः

प्रकरणानि

I गुरु-शरणता ६०

१ मोक्षकारण-सामग्री २३

२ शिष्य-देशिक-संवादः २४

३ मोहं जहि १३

II सांख्य-बुद्धिः ५९

४ शरीर-त्रयं अव्यक्तं च ८

५ पंचकोश-विलक्षणः १४

६ पंचकोश-विलक्षणत्वम् १४

७ सांख्य-निष्ठा २३

III योग-बुद्धिः ९४

८ निर्वासनो भव १६

९ अहंकारो हेयः १०

१० न प्रमदितव्यम् २६

११ समाधत्स्व १२

१२ वैराग्य-बोधौ मुक्तिहेतू १९

१३ वैराग्य-बोध-परिणामः ११

IV स्थित-प्रज्ञः ३५

१४ स्थित-प्रज्ञता १५

१५ न पारमार्थिकं प्रारब्धादि २०

V ब्रह्म-निर्वाणम् ५२

१६ शिष्यस्य कृतार्थता-प्रकाशनम् २०

१७ आत्मारामः सन् कालं नय २१

१८ ब्रह्म-विहारः ११

३००

—[विवेक-चूडामणितः]

I गुरु-शरणता

:१: मोक्ष-कारण-सामग्री

१ सर्ववेदांत-सिद्धांत-गोचरं तं अगोचरम्
गोविंदं परमानंदं सद्गुरुं प्रणतो ऽस्म्यहम्

२ दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रह-हेतुकम्
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष-संश्रयः

३ वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः
आत्मैक्य-बोधेन विनापि मुक्तिर्
न सिध्यति ब्रह्म-शतान्तरे ऽपि

४ अतो विमुक्त्यै प्रयतेत विद्वान्
संन्यस्त-बाह्यार्थ-सुखस्पृहः सन्
संतं महांतं समुपेत्य देशिकं
तेनोपदिष्टार्थ-समाहितात्मा

५ उद्धरेत् आत्मनात्मानं मग्नं संसार-वारिधौ
योगारूढत्व-मासाद्य सम्यग्दर्शन-निष्ठया

६ संन्यस्य सर्व-कर्माणि भवबंध-विमुक्तये
यत्यतां पंडितैर् धीरैर् आत्माभ्यास उपस्थितैः

७ चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये
वस्तु-सिद्धिर् विचारेण न किंचित् कर्म-कोटिभिः

८ सम्यग्-विचारतः सिद्धा रज्जुतत्त्वावधारणा
भ्रांतोदित-महासर्प-भयदुःख-विनाशिनी

९ साधनान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभिः
येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा यदभावे न सिध्यति

१० आदौ नित्यानित्य-वस्तुविवेकः परिगण्यते
इहामुत्र-फलभोग-विरागस् तदनंतरम्
शमादिषट्क-संपत्तिर् मुमुक्षुत्वं इति स्फुटम्

११ ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या त्एवंरूपो विनिश्चयः
सो ऽयं नित्यानित्यवस्तु-विवेकः समुदाहृतः

१२ तत् वैराग्यं जिहासा या दर्शन-श्रवणादिभिः
देहादि-ब्रह्म-पर्यन्ते अनित्ये भोग-वस्तुनि

१३ विरज्य विषय-व्रातात् दोष-दृष्ट्या मुहुर् मुहुः
स्व-लक्ष्ये नियतावस्था मनसः शम उच्यते

१४ विषयेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्व-स्व-गोलके
उभयेषां इंद्रियाणां स दमः परिकीर्तितः

१५ बाह्यानालंबनं वृत्तेर् एवोपरति-रुत्तमा

१६ सहनं सर्व-दुःखानां अ-प्रतीकारपूर्वकम्
चिंता-विलाप-रहितं सा तितिक्षा निगद्यते

१७ शास्त्रस्य गुरु-वाक्यस्य सत्य-बुद्ध्यवधारणम्
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर् यया वस्तू-पलभ्यते

१८ सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वदा
तत् समाधान-मित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्

१९ अहंकारादि-देहांतान् बंधान् अज्ञान-कल्पितान्
स्व-स्वरूपावबोधेन मोक्तुं इच्छा मुमुक्षुता

२० मंद-मध्यम-रूपा-पि वैराग्येण शमादिना
प्रसादेन गुरोः सेयं प्रवृद्धा सूयते फलम्

२१ वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते
तस्मिन् एवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः

२२ एतयोर् मन्दता यत्र विरक्तत्व-मुमुक्षयोः
मरौ सलिलवत् तत्र शमादेर् भासमात्रता

२३ मोक्ष-कारण-सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी
स्व-स्वरूपानुसंधानं भक्तिर् इत्यभिधीयते

:२: शिष्य-देशिक-संवादः

१ उक्त-साधन-संपन्नस् तत्त्व-जिज्ञासु रात्मनः
उपसीदेत् गुरुं प्राज्ञं यस्मात् बंध-विमोक्षणम्

२ तं आराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्व-प्रश्रय-सेवनैः
प्रसन्नं तं अनुप्राप्य पृच्छेत् ज्ञातव्य मात्मनः

३ स्वामिन् नमस् ते नतलोक-बंधो
कारुण्य-सिंधो पतितं भवाब्धौ
मां उद्धरा त्मीय-कटाक्ष-दृष्टया
ऋज्व्या तिकारुण्य-सुधाभिवृष्टया

४ शांता महांतो निवसंति संतो
वसंतवत् लोक-हितं चरंतः
तीर्णाः स्वयं भीम-भवार्णवं जनान्
अहेतुना न्यान् अपि तारयन्तः

५ अयं स्वभावः स्वत एव यत् पर-
श्रमापनोद-प्रवणं महात्मनाम्
सुधांशु-रेष स्वय-मर्क-कर्कश-
प्रभाभितप्तां अवति क्षितिं किल

६ कथं तरेयं भव-सिंधु-मेतं
का वा गतिर् मे, कतमो ऽस्त्युपायः
जाने न किंचित् कृपया-व मां प्रभो
संसारदुःख-क्षति-मातनुष्व

७ तथा वदंतं शरणागतं स्वं
संसार-दावानल-ताप-तप्तम्
निरीक्ष्य कारुण्य-रसार्द्र-दृष्ट्या-
ऽद्धात् अभीतिं सहसा महात्मा

८ विद्वान् स तस्मै उपसत्ति-मीयुषे
मुमुक्षवे साधु यथोक्त-कारिणे
प्रशांत-चित्ताय शमान्विताय
तत्त्वोपदेशं कृपयैव कुर्यात्

९ मा भैष्ट विद्वन् तव नास्त्यपायः
संसार-सिंधोस् तरणे ऽस्त्युपायः
येनैव याता यतयो ऽस्य पारं
तमेव मार्गं तव निर्दिशामि

१० श्रद्धा-भक्ति-ध्यान-योगात् मुमुक्षोर्
मुक्तेर् हेतून् वक्ति साक्षात् श्रुतेर् गीः
यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य
मोक्षो ऽविद्या-कल्पितात् देह-बंधात्

११ धन्यो ऽसि कृतकृत्यो ऽसि पावितं ते कुलं त्वया
यत् अविद्याबंध-मुक्त्या ब्रह्मीभवितुमिच्छसि

१२ ऋणमोचन-कर्तारः पितुः संति सुतादयः
बंधमोचन-कर्ता तु स्वस्मात् अन्यो न कश्चन

१३ मस्तक-न्यस्त-भारादेर् दुःखं अन्यैर् निवार्यते
क्षुधादि-कृत-दुःखं तु विना स्वेन न केनचित्

१४ पथ्यं औषध-सेवा च क्रियते येन रोगिणा
आरोग्य-सिद्धिर् दृष्टास्य नान्यानुष्ठित-कर्मणः

१५ वस्तु-स्वरूपं स्फुटबोध-चक्षुषा, स्वेनैव वेद्यं न तु पंडितनं
चंद्र-स्वरूपं निज-चक्षुषैव, ज्ञातव्यमन्यैर् अवगम्यते किम्

१६ अविद्या-काम-कर्मादि-पाशबंधं विमोचितुम्
कः शक्नुयात् विनात्मानं कल्प-कोटिशतैरपि

१७ वीणाया रूप-सौंदर्यं तंत्री-वादन-सौष्ठवम्
प्रजा-रंजनमात्रं तत् न साम्राज्याय कल्पते

१८ वाग् वैखरी शब्द-झरी शास्त्र-व्याख्यान-कौशलम्
वैदुष्यं विदुषां तद्वत् भुक्तये न तु मुक्तये

१९ अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला
विज्ञाते ऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला

२० शब्द-जालं महारण्यं चित्त-भ्रमण-कारणम्
अतः प्रयत्नात् ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञात् तत्त्व-मात्मनः

२१ न गच्छति विना पानं व्याधिर् औषध-शब्दतः
विना ऽपरोक्षानुभवं ब्रह्म-शब्दैर् न मुच्यते

२२ अकृत्वा शत्रु-संहारं अगत्वा-खिल-भू-श्रियम्
राजा-हं इति शब्दात् नो राजा भवितु-मर्हति

२३ आप्तोक्तिं खननं तथोपरि शिलाद्युत्कर्षणं स्वीकृतिं
निक्षेपः समपेक्षते नहि बहिः शब्दैस्तु निर्गच्छति
तद्वत् ब्रह्मविदोपदेश-मनन-ध्यानादिभिर् लभ्यते
मायाकार्य-तिरोहितं स्व-ममलं तत्त्वं न दुर्युक्तिभिः

२४ तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन भवबंध-विमुक्तये
स्वैरेव यत्नः कर्तव्यो रोगादौ इव पंडितैः

:३: मोहं जहि

१ मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते
वैराग्य-मत्यंत-मनित्य-वस्तुषु
ततः शमश् चापि दमस् तितिक्षा
न्यासः प्रसक्ताखिल-कर्मणां भृशम्

२ ततः श्रुतिस् तन्-मननं सतत्त्व-
ध्यानं चिरं नित्य-निरंतरं मुनेः
ततो ऽविकल्पं पर-मेत्य विद्वान्
इहैव निर्वाण-सुखं समृच्छति

३ मोक्षस्य कांक्षा यदि वै तवास्ति
त्यजा-तिदूरात् विषयान् विषं यथा
पीयूषवत् तोष-दया-क्षमार्जव-प्रशान्ति-
दान्तीर् भज नित्य-मादरात्

४ य एषु मूढा विषयेषु बद्धा
रागोरुपाशेन सुदुर्दमेन
आयांति निर्यात्यध ऊर्ध्व-मुच्चैः
स्वकर्म-दूतेन जवेन नीताः

५ शब्दादिभिः पंचभि-रेव पंच
पंचत्व-मापुः स्व-गुणेन बद्धाः
कुरंग-मातंग-पतंग-मीन-
भृंगा नरः पंचभि-रंचितः किम्

[illegible]
विषं निहंति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषा-प्य-यम्

७ विषयाशा-महापाशात् यो विमुक्तः सुदुस्त्यजात्
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षट्शास्त्र-वेद्यपि

८ आपात-वैराग्यवतो मुमुक्षून्
भवाब्धि-पारं प्रतियातु-मुद्यतान्
आशा-ग्रहो मज्जयते ऽन्तराले
निगृह्य कंठे विनिवर्त्य वेगात्

९ विषयाशा-ग्रहो येन सुविरक्त्यसिना हतः
स गच्छति भवांभोधेः पारं प्रत्यूह-वर्जितः

१० अनुक्षणं यत् परिहृत्य कृत्यं
अनाद्यविद्याकृत-बंध-मोक्षणम्
देहः परार्थो ऽय-ममुष्य पोषणे
यः सज्जते स स्व-मनेन हंति

११ शरीर-पोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति
ग्राहं दारु-धिया धृत्वा नदीं तर्तुं स गच्छति

१२ मोह एव महामृत्युर् मुमुक्षोर् वपुरादिषु
मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपद मर्हति

१३ मोहं जहि महामृत्युं देह-दार-सुतादिषु
यं जित्वा मुनयो यांति तत् विष्णोः परमं पदम्

II सांख्य-बुद्धिः

:४: शरीर-त्रयं अव्यक्तं च

१ त्वङ्-मांस-रुधिर-स्नायु-मेदो-मज्जास्थि-संकुलम्
पूर्णं मूत्र-पुरीषाभ्यां स्थूलं निद्य मिदं वपुः

२ पंचीकृतेभ्यो भूतेभ्यः स्थूलेभ्यः पूर्व-कर्मणा
समुत्पन्न मिदं स्थूलं भोगायतन मात्मनः
अवस्था जागरस् तस्य स्थूलार्थानुभवो यतः

३ वागादि पंच श्रवणादि पंच
प्राणादि पंचा भ्र-मुखानि पंच
बुद्ध्या द्यविद्यापि च काम-कर्मणी
पुर्यष्टकं सूक्ष्म-शरीर माहुः

४ इदं शरीरं शृणु सूक्ष्म-संज्ञितं
लिंगं त्वपंचीकृत-भूत-संभवम्
स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था
स्वमात्रशेषेण विभाति यत्र

५ अव्यक्त-नाम्नी परमेश-शक्तिः
अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा
कार्यानुमेया सुधियैव माया
यया जगत् सर्व मिदं प्रसूयते

६ सत् नाप्यसत् नाप्युभयात्मिका नो
भिन्ना प्यभिन्ना प्युभयात्मिका नो
सांगा प्यनंगा ह्युभयात्मिका नो
महाद्भुता ऽनिर्वचनीयरूपा

७ शुद्ध-द्वय-ब्रह्म-विबोध-नाश्या
सर्प-भ्रमो रज्जु-विवेकतो यथा
रजस् तमस् सत्त्व मिति प्रसिद्धा
गुणास् तदीयाः प्रथितैः स्वकार्यैः

८ अव्यक्त मेतत् त्रिगुणैर् नियुक्तं
तत् कारणं नाम शरीर मात्मनः
सुषुप्ति रेतस्य विभक्त्यवस्था
प्रलीन-सर्वेंद्रिय-बुद्धि-वृत्तिः

:५: पंचकोश-विलक्षणः

१ अस्ति कश्चित् स्वयं नित्यं अहंप्रत्यय-लंबनः
अवस्थात्रय-साक्षी सन् पंचकोश-विलक्षणः

२ यः पश्यति स्वयं सर्वं यं न पश्यति कश्चन
यश् चेतयति बुद्ध्यादि न तत् यं चेतयत्य॑यम्

३ येन विश्वं इदं व्याप्तं यं न व्याप्नोति किंचन
आभा-रूपं इदं सर्वं यं भांतं अनुभात्य॑यम्

४ यस्य संनिधिमात्रेण देहेंद्रिय-मनोधियः
विषयेषु स्वकीयेषु वर्तंते प्रेरिता इव

५ एषो ऽन्तरात्मा पुरुषः पुराणो, निरंतराखंड-सुखानुभूतिः
सदैकरूपः प्रतिबोधमात्रो, येने॑षिता वाग्-असवश् चरंति

६ प्रकृति-विकृति-भिन्नः शुद्धबोध-स्वभावः
सदसदिद॑मशेषं भासयन् निर्विशेषः
विलसति परमात्मा जाग्रदादिष्व॑वस्था-
स्व॑हमहमिति साक्षात् साक्षिरूपेण बुद्धेः

७ अत्रा॑नात्मन्य॑हमिति मतिर् बंध एषो ऽस्य पुंसः
प्राप्तो ऽज्ञानात् जननमरण-क्लेशसंपात-हेतुः
येनैवा॑यं वपु॑रिद॑मसत् सत्यमि॑त्यात्म-बुद्ध्या
पुष्यत्यु॑क्षत्य॑वति विषयैस् तंतुभिः कोशकृद्वत्

८ अ-तस्मिन् तद्बुद्धिः प्रभवति विमूढस्य तमसा
विवेकाभावात् वै स्फुरति भुजगे रज्जु-धिषणा
ततो ऽनर्थ-व्रातो निपतति समादातु-रधिकस्
ततो यो ऽसद्ग्राहः स हि भवति बंधः शृणु सखे

९ अखंड-नित्याद्वय-बोध-शक्त्या
स्फुरंत-मात्मान-मनंत-वैभवम्
समावृणोत्या-वृति-शक्ति-रेषा
तमोमयी राहुरिवा-र्क-बिंबम्

१० तिरोभूते स्वात्मन्य-मलतर-तेजोवति पुमान्
अनात्मानं मोहात् अहमिति शरीरं कलयति
ततः कामक्रोध-प्रभृतिभि-रमुं बंधनगुणैः
परं विक्षेपाख्या रजस उरु-शक्तिर् व्यथयति

११ कवलित-दिननाथे दुर्दिने सांद्र-मेघैर्
व्यथयति हिम-झंझा-वायु-रुग्रो यथैतान्
अविरत-तमसा-त्मन्या-वृते मूढबुद्धिं
क्षपयति बहुदुःखैस् तीव्र-विक्षेप-शक्तिः

१२ एताभ्यामेव शक्तिभ्यां बंधः पुंसः समागतः
याभ्यां विमोहितो देहं मत्वा-त्मानं भ्रमत्य-यम्

१३ नास्त्रैर् न शस्त्रै-रनिलेन वह्निना
छेत्तुं न शक्यो न च कर्म-कोटिभिः
विवेकविज्ञान-महासिना विना
धातुः प्रसादेन सितेन मंजुना

१४ मुंजात् इषीकामिव दृश्य-वर्गात्
प्रत्यंच-मात्मान-मसंग-मक्रियम्
विविच्य तत्र प्रविलाप्य सर्वं
तदात्मना तिष्ठति यः स मुक्तः

:६: पंचकोश-विलक्षणत्वम्

१ देहो ऽय-मन्न-भवनो ऽन्नमयस्तु कोशः
अन्नेन जीवति विनश्यति तद्विहीनः
त्वक्चर्म-मांस-रुधिरास्थि-पुरीष-राशिर्
नायं स्वयं भवितु-मर्हति नित्य-शुद्धः

२ कर्मेन्द्रियैः पंचभि-रंचितो ऽयं
प्राणो भवेत् प्राणमयस्तु कोशः
येना-त्मवान् अन्नमयो ऽन्नपूर्णः
प्रवर्तते ऽसौ सकल-क्रियासु

३ नैवात्मापि प्राणमयो वायु-विकारो
गंता-गंता वायुवदंतर्-बहिरेषः
यस्मात् किंचित् क्वापि न वेत्तीष्टमनिष्टं
स्वं वान्यं वा किंचन नित्यं परतंत्रः

४ ज्ञानेंद्रियाणि च मनश्च मनोमयः स्यात्
कोशो ममाहमिति वस्तु-विकल्प-हेतुः
संज्ञादि-भेदकलना-कलितो बलीयान्
तत्-पूर्वकोशमभिपूर्य विजृंभते यः

५ मनोमयो नापि भवेत् परात्मा
आद्यंतवत्वात् परिणामि-भावात्
दुःखात्मकत्वात् विषयत्व-हेतोर्
द्रष्टा हि दृश्यात्मतया न दृष्टः

६ बुद्धिर् बुद्धींद्रियैः सार्धं स-वृत्तिः कर्तृ-लक्षणः
विज्ञानमय-कोशः स्यात् पुंसः संसार-कारणम्

७ विज्ञानकोशोऽयमतिप्रकाशः,प्रकृष्ट-सांनिध्य-वशात् परात्मनः
अतो भवत्येष उपाधिरस्य, यदात्म-धीः संसरति भ्रमेण

८ योऽयं विज्ञानमयः, प्राणेषु हृदि स्फुरत् स्वयं-ज्योतिः
कूटस्थः सन् आत्मा, कर्ता भोक्ता भवत्युपाधि-स्थः

९ अतो नायं परात्मा स्यात् विज्ञानमय-शब्दभाक्
विकारित्वात् जडत्वात् च परिच्छिन्नत्व-हेतुतः
दृश्यत्वाद् व्यभिचारित्वात् नानित्यो नित्य इष्यते

१० आनंद-प्रतिबिंब-चुंबित-तनुर् वृत्तिस् तमो-जृंभिता
स्यात् आनंदमयः प्रियादि-गुणकः स्वेष्टार्थ-लाभोदये
पुण्यस्या ऽनुभवे विभाति कृतिनां आनंदरूपः स्वयं
भूत्वा नंदति यत्र साधु तनुभृन्मात्रः प्रयत्नं विना

११ आनंदमय-कोशस्य सुषुप्तौ स्फूर्ति रुत्कटा
स्वप्न-जागरयोर् ईषत् इष्ट-संदर्शनादिना

१२ नैवाय मानंदमयः परात्मा, सोपाधिकत्वात् प्रकृतेर् विकारात्
कार्यत्व-हेतोः सुकृत-क्रियायाः, विकारसंघात-समाहितत्वात्

१३ पंचानामपि कोशानां निषेधे युक्तितः श्रुतेः
तन्निषेधावधिः साक्षी बोधरूपो ऽवशिष्यते

१४ यो ऽयं आत्मा स्वयं-ज्योतिः पंचकोश-विलक्षणः
अवस्थात्रय-साक्षी सन् निर् विकारो निरंजनः
सदानंदः स विज्ञेयः स्वात्मत्वेन विपश्चिता

: ७ : सांख्य-निष्ठा

शिष्य उवाच :

१ मिथ्यात्वेन निषिद्धेषु कोशेष्वेतेषु पंचसु
सर्वाभावं विना किंचित् न पश्याम्यत्र हे गुरो
विज्ञेयं किमु वस्त्वस्ति स्वात्मनात्र विपश्चिता

श्रीगुरुः उवाच :

२ सत्यं उक्तं त्वया विद्वन् निपुणोऽसि विचारणे
अहमादि-विकारास् ते तदभावोऽयमप्यनु

३ सर्वे येनानुभूयंते यः स्वयं नानुभूयते
तं आत्मानं वेदितारं विद्धि बुध्या सुसूक्ष्मया

४ जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु स्फुटतरं योऽसौ समुज्जृंभते
प्रत्यग्रूपतया सदाहमहमित्यंतःस्फुरन् एकधा
नानाकार-विकार-भागिन इमान् पश्यन् अहंधी-मुखान्
नित्यानंदचिदात्मना स्फुरति तं विद्धि स्वमेतं हृदि

५ घटोदके बिंबित-मर्क-बिंबं
आलोक्य मूढो रवि-मेव मन्यते
तथा चिदाभास-मुपाधि-संस्थं
भ्रांत्या-हमित्येव जडो ऽभिमन्यते

६ घटं जलं तद्गत-मर्क-बिंबं, विहाय सर्वं विनिरीक्ष्यते ऽर्कः
तटस्थ एतत्त्रितयावभासकः, स्वयं-प्रकाशो विदुषा यथा तथा—

७ देहं धियं चित्प्रतिबिंब-मेवं, विसृज्य बुद्धौ निहितं गुहायाम्
द्रष्टार-मात्मान-मखंड-बोधं, सर्व-प्रकाशं सदसद्-विलक्षणम्

८ ब्रह्माभिन्नत्व-विज्ञानं भव-मोक्षस्य कारणम्
येना-द्वितीय-मानंदं ब्रह्म संपद्यते बुधः

९ सत्यं ज्ञान-मनंतं, ब्रह्म विशुद्धं परं स्वतः-सिद्धम्
नित्यानंदैकरसं, प्रत्य-गभिन्नं निरंतरं जयति

१० सादिदं परमाद्वैतं, स्वस्मात् अन्यस्य वस्तुनो ऽभावात्
न ह्यन्य-दस्ति किंचित्, सम्यक्-परमार्थ-तत्त्वबोधे हि

११ यदिदं सकलं विश्वं, नानारूपं प्रतीत-मज्ञानात्
तत् सर्वं ब्रह्मैव, प्रत्यस्ताशेष-भावना-दोषम्

१२ केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूपं, घटस्य संदर्शयितुं न शक्यते
अतो घटः कल्पित एव मोहात्, मृदेव सत्यं परमार्थभूतम्

१३ सद्ब्रह्मकार्यं सकलं सदेव, तन्मात्र-मेतत् न ततोऽन्यद-स्ति
अस्तीति यो वक्ति न तस्य मोहो, विनिर्गतो निद्रितवत् प्रजल्पः

१४ यदि सत्यं भवेत् विश्वं सुषुप्तौ उपलभ्यताम्
यत् नोपलभ्यते किंचित् अतोऽसत् स्वप्नवत् मृषा

१५ अतः परं ब्रह्म सद-द्वितीयं, विशुद्धविज्ञान-घनं निरंजनम्
प्रशांत-माद्यंतविहीन-मक्रियं, निरंतरानंदरस-स्वरूपम्

१६ निरस्त-मायाकृत-सर्वभेदं,
नित्यं सुखं निष्कल-मप्रमेयम्
अरूप-मव्यक्त-मनाख्य-मव्ययं,
ज्योतिः स्वयं किंचि-दिदं चकास्ति

१७ अहेय-मनुपादेयं मनो-वाचां अगोचरम्
अप्रमेयं अनाद्यंतं ब्रह्म पूर्णं अहं महः

१८ तत्-त्वं-पदाभ्यां अभिधीयमानयोर्
ब्रह्मात्मयोः शोधितयोर् यदीत्थम्
श्रुत्या तयोस् 'तत् त्व-मसीति' सम्यक्
एकत्वमेव प्रतिपाद्यते मुहुः

१९ ऐक्यं तयोर् लक्षितयोर् न वाच्ययोर्
निगद्यते ऽन्योन्य-विरुद्ध-धर्मिणोः
खद्योत-भान्वोरिव राज-भृत्ययोः
कूपांबुराश्योः परमाणु-मेर्वोः

२० तयोर् विरोधो ऽय-मुपाधि-कल्पितो
न वास्तवः कश्चि-दुपाधि-रेषः
ईशस्य माया-महदादि-कारणं
जीवस्य कार्यं शृणु पंचकोशम्

२१ एतौ उपाधी पर-जीवयोस् तयोः
सम्यग्-निरासे न परो न जीवः
राज्यं नरेंद्रस्य, भटस्य खेटकस्
तयोर् अपोहे न भटो न राजा

२२ अतो मृषामात्रमिदं प्रतीतं, जहीहि यत् त्वात्मतया गृहीतम्
ब्रह्माह-मित्येव विशुद्धबुध्या विद्धि स्वमात्मान-मखंडबोधम्

२३ मृत्कार्यं सकलं घटादि सततं मृन्मात्र-मेवा-भितस्
तद्वत् सज्-जनितं सदात्मक-मिदं सन्मात्रमेवा-खिलम्
यस्मात् नास्ति सतः परं किमपि तत् सत्यं स आत्मा स्वयं
तस्मात् तत् त्व-मसि प्रशांत-ममलं ब्रह्मा-द्वयं यत् परम्

III योग-बुद्धिः

:८: निर्वासनो भव

१ ज्ञाते वस्तुन्य ऽपि बलवती वासना ऽनादि ऽरेषा
कर्ता भोक्ता ऽप्यहमिति दृढा या ऽस्य संसार-हेतुः
प्रत्यग्दृष्टया ऽत्मनि निवसता सा ऽपनेया प्रयत्नात्
मुक्तिं प्राहुस् तदिह मुनयो वासना-तानवं यत्

२ लोक-वासनया जंतोः शास्त्र-वासनयापि च
देह-वासनया ज्ञानं यथावत् नैव जायते

३ संसारकारागृह-मोक्ष ऽमिच्छोः
अयोमयं पादनिबद्धशृंखलम्
वदंति तज्ज्ञाः पटु-वासना-त्रयं
यो ऽस्मात् विमुक्तः समुपैति मुक्तिम्

४ अंतःश्रितानंत-दुरंत-वासना-धूली-
विलिप्ता परमात्म-वासना
प्रज्ञातिसंघर्षणतो विशुद्धा
प्रतीयते चंदनगंधवत् स्फुटा

५ अनात्म-वासना-जालैस् तिरोभूता ऽत्म-वासना
नित्यात्मनिष्ठया तेषां नाशे भाति स्वयं स्फुटा

६ यथा यथा प्रत्यगवस्थितं मनस्
तथा तथा मुंचति बाह्य-वासनाः
निःशेषमोक्षे सति वासनानां
आत्मानुभूतिः प्रतिबंध-शून्या

७ स्वात्मन्येव सदा स्थित्या मनो नश्यति योगिनः
वासनानां क्षयश् चा॑तः स्वाध्यासापनयं कुरु

८ तमो द्वाभ्यां रजः सत्त्वात् सत्त्वं शुद्धेन नश्यति
तस्मात् सत्त्वं अवष्टभ्य स्वाध्यासापनयं कुरु

९ प्रारब्धं पुष्यति वपुर् इति निश्चित्य निश्चलः
धैर्यं आलंब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं कुरु

१० कार्य-प्रवर्धनात् बीज-प्रवृद्धिः परिदृश्यते
कार्य-नाशात् बीज-नाशस् तस्मात् काय निरोधयेत्

११ वासना-वृद्धितः कार्यं कार्य-वृध्द्या च वासना
वर्धते सर्वदा पुंसः संसारो न निवर्तते

१२ संसारबंध-विच्छित्यै तत् द्वयं प्रदहेत् यतिः
वासना-वृद्धि॑रेताभ्यां चिंतया क्रियया बहिः
ताभ्यां प्रवर्धमाना सा सूते संसृति॑मात्मनः

१३ त्रयाणां च क्षयोपायः सर्वावस्थासु सर्वदा
सर्वत्र सर्वतः सर्वं ब्रह्ममात्रावलोकनम्

१४ सद्वासना-स्फूर्ति-विजृंभणे सति
असौ विलीना त्वहमादि-वासना
अतिप्रकृष्टा प्यरुण-प्रभायां
विलीयते साधु यथा तमिस्रा

१५ तमस् तमःकार्य मनर्थ-जालं
न दृश्यते सत्युदिते दिनेशे
तथा द्वयानंद-रसानुभूतौ
नैवास्ति बंधो न च दुःख-गंधः

१६ दृश्यं प्रतीतं प्रविलापयन् स्वयं
सन्मात्र मानन्दघनं विभावयन्
समाहितः सन् बहिरंतरं वा
कालं नयेथाः सति कर्मबंधे

:९: अहंकारो हेयः

१ सन्त्य न्ये प्रतिबंधा, पुंसः संसार-हेतवो दृष्टाः
तेषां एकं मूलं, प्रथम-विकारो भवत्य हंकारः

२ अहंकार-ग्रहात् मुक्तः स्व-रूपं उपपद्यते
चंद्रवत् विमलः पूर्णः सदानंदः स्वयंप्रभः

३ ब्रह्मानंद-निधिर् महाबलवता हंकार-घोराहिना
संवेष्ट्या त्मनि रक्ष्यते गुणमयैश् चंडैस् त्रिभिर् मस्तकैः
विज्ञानाख्य-महासिना द्युतिमता विच्छिद्य शीर्ष-त्रयं
निर्मूल्या हि मिमं निधिं सुखकरं धीरो ऽनुभोक्तुं क्षमः

४ यावद् वा यत्किंचित्, विषदोष-स्फूर्ति रस्ति चेत् देहे
कथ मारोग्याय भवेत्, तद्व दहंतापि योगिनो मुक्त्यै

५ अहमो ऽत्यंत-निवृत्त्या, तत्कृत-नानाविकल्प-संहृत्या
प्रत्यक्-तत्त्व-विवेकात्, अय मह मस्मीति विंदते तत्त्वम्

६ अहंकर्तर्य स्मिन् अहमिति मतिं मुंच सहसा
विकारात्मन्या त्म-प्रतिफल-जुषि स्वस्थिति-मुषि
यदध्यासात् प्राप्ता जनि-मृति-जरा-दुःख-बहुला
प्रतीचश् चिन्मूर्तेस् तव सुखतनोः संसृति रियम्

७ सदैकरूपस्य चिदात्मनो विभोर्
आनंद-मूर्तेरनवद्य-कीर्तेः
नैवान्यथा क्वाप्यविकारिणस् ते
विनाहमध्यासममुष्य संसृतिः

८ तस्मात् अहंकारमिमं स्व-शत्रुं
भोक्तुर् गले कंटकवत् प्रतीतम्
विच्छिद्य विज्ञान-महासिना स्फुटं
भुंक्ष्वात्म-साम्राज्य-सुखं यथेष्टम्

९ समूलकृत्तो ऽपि महानहं पुनर्
व्युल्लेखितः स्यात् यदि चेतसा क्षणम्
संजीव्य विक्षेप-शतं करोति
नभस्वता प्रावृषि वारिदो यथा

१० निगृह्य शत्रोर् अहमो ऽवकाशः
क्वचित् न देयो विषयानुचिंतया
स एव संजीवन-हेतुरस्य
प्रक्षीण-जंबीर-तरोरिवांबु

:१०: न प्रमदितव्यम्

१ प्रमादो ब्रह्म-निष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन
प्रमादो मृत्यु-रित्याह भगवान् ब्रह्मणः सुतः

२ न प्रमादात् अनर्थो ऽन्यो ज्ञानिनः स्वस्वरूपतः
ततो मोहस् ततो ऽहंधीस् ततो बंधस् ततो व्यथा

३ यथा प्रकृष्टं शैवालं क्षणमात्रं न तिष्ठति
आवृणोति तथा माया प्राज्ञं वापि पराङ्मुखम्

४ लक्ष्य-च्युतं चेत् यदि चित्त-मीषद्
बहिर्-मुखं संनिपतेत् ततस् ततः
प्रमादतः प्रच्युत-केलिकंदुकः
सोपान-पंक्तौ पतितो यथा तथा

५ विषयेष्वा-विशत् चेतः संकल्पयति तद्-गुणान्
संम्यक्संकल्पनात् कामः कामात् पुंसः प्रवर्तनम्

६ ततः स्वरूप-विभ्रंशो विभ्रष्टस् तु पत-त्यधः
पतितस्य विना नाशं पुनर् नारोह ईक्ष्यते

७ अतः प्रमादात् न परो ऽस्ति मृत्युर्, विवेकिनो ब्रह्मविदः समाधौ
समाहितः सिद्धि-मुपैति सम्यक्, समाहितात्मा भव सावधानः

८ जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहे च स केवलः
यत्किंचित् पश्यतो भेदं भयं ब्रूते यजुः-श्रुतिः

९ यदा कदा वापि विपश्चि-देष, ब्रह्मण्य-नंते ऽप्यणुमात्र-भेदम्
पश्य-त्यथा-मुष्य भयं तदैव, यद् वीक्षितं भिन्नतया प्रमादात्

१० श्रुति-स्मृति-न्याय-शतैर् निषिद्धे
दृश्ये ऽत्र यः स्वात्म-मतिं करोति
उपैति दुःखोपरि दुःखजातं
निषिद्ध-कर्ता स मलिम्लुचो यथा

११ सत्याभिसंधान-रतो विमुक्तो, महत्त्व-मात्मीय-मुपैति नित्यम्
मिथ्याभिसंधान-रतस् तु नश्येद्, दृष्टं तदेतत् यदचोर-चोरयोः

१२ यति-रसदनुसंधिं बंध-हेतुं विहाय
स्वय-मय-मह-मस्मी-त्यात्म-दृष्ट्यैव तिष्ठेत्
सुखयति ननु निष्ठा ब्रह्मणि स्वानुभूत्या
हरति पर-मविद्या-कार्य-दुःखं प्रतीतम्

१३ बाह्यानुसंधिः परिवर्धयेत् फलं,दुर्वासनां एव ततस् ततो ऽधिकाम्
ज्ञात्वा विवेकैः परिहृत्य बाह्यं, स्वात्मानुसंधिं विदधीत नित्यम्

१४ बाह्ये निरुद्धे मनसः प्रसन्नता, मनःप्रसादे परमात्म-दर्शनम्
तस्मिन् सुदृष्टे भवबंध-नाशो, बहिर्-निरोधः पदवी विमुक्तेः

१५ कः पंडितः सन् सदसद्-विवेकी, श्रुति-प्रमाणः परमार्थ-दर्शी
जानन् हि कुर्यात् असतो ऽवलंबं, स्वपात-हेतोः शिशुवत् मुमुक्षुः

१६ देहादि-संसक्ति-मतो न मुक्तिर् मुक्तस्य देहाद्यभिमत्यभावः
सुप्तस्य नो जागरणं,न जाग्रतः स्वप्नस्,तयोर् भिन्नगुणाश्रयत्वात्

१७ अंतर्-बहिः स्वं स्थिर-जंगमेषु, ज्ञानात्मना धारतया विलोक्य
त्यक्ताखिलोपाधि रखंडरूपः, पूर्णात्मना यः स्थित एष मुक्तः

१८ सर्वात्मना बंधविमुक्ति-हेतुः
सर्वात्मभावात् न परो ऽस्ति कश्चित्
दृश्याग्रहे सत्यु पपद्यते ऽसौ
सर्वात्म-भावो ऽस्य सदात्म-निष्ठया

१९ दृश्यस्या ग्रहणं कथं नु घटते देहात्मना तिष्ठतो
बाह्यार्थानुभव-प्रसक्त-मनसस् तत्तत्-क्रियां कुर्वतः
संन्यस्ताखिल-धर्मकर्म-विषयैर् नित्यात्मनिष्ठा-परैस्
तत्त्वज्ञैः करणीय मात्मनि सदानंदेच्छुभिर् यत्नतः

२० आरूढ-शक्ते रहमो विनाशः
कर्तुं न शक्यः सहसापि पंडितैः
ये निर् विकल्पाख्य-समाधि-निश्चलास्
तान् अंतरा नंतभवा हि वासनाः

२१ अहंबुध्यैव मोहिन्या योजयित्वाऽऽवृतेर् बलात्
विक्षेप-शक्तिः पुरुषं विक्षेपयति तद्गुणैः

२२ विक्षेपशक्ति-विजयो विषमो विधातुं
निःशेषमावरणशक्ति-निवृत्यभावे
दृग्-दृश्ययोः स्फुट-पयोजलवत् विभागे
नश्येत् तदावरणमात्मनि च स्वभावात्

२३ सम्यग्विवेकः स्फुटबोध-जन्यो, विभज्य दृग्दृश्य-पदार्थ-तत्त्वम्
छिनत्ति मायाकृत-मोहबंधं, यस्मात् विमुक्तस्य पुनर् न संसृतिः

२४ परावरैकत्व-विवेक-वह्निर्, दहत्यविद्या-गहनं अशेषम्
किं स्यात् पुनः संसरणस्य बीजं, अद्वैत-भावं समुपेयुषो ऽस्य

२५ आवरणस्य निवृत्तिर्, भवति च सम्यक्पदार्थ-दर्शनतः
मिथ्याज्ञान-विनाशात्, तद्वत् विक्षेपजनित-दुःखनिवृत्तिः

२६ इत्थं विपश्चित् सदसत् विभज्य
निश्चित्य तत्त्वं निजबोध-दृष्ट्या
ज्ञात्वा स्वमात्मानमखंडबोधं
तेभ्यो विमुक्तः स्वयमेव शाम्यति

:११: समाधत्स्व

१ समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्यं, श्रोत्रादि चेतः स्व-महं चिदात्मनि
त एव मुक्ता भवपाश-बंधनैर्, नान्ये तु पारोक्ष्य-कथाभिधायिनः

२ क्रियांतरासक्ति-मपास्य कीटको
ध्यायन् यथा-लिं अलिभाव-मृच्छति
तथैव योगी परमात्म-तत्त्वं
ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठया

३ अतीव सूक्ष्मं परमात्म-तत्त्वं
न स्थूल-दृष्ट्या प्रतिपत्तु-मर्हति
समाधिना-त्यंत-सुसूक्ष्म-वृत्त्या
ज्ञातव्य-मार्यैर् अतिशुद्ध-बुद्धिभिः

४ यथा सुवर्णं पुटपाक-शोधितं
त्यक्त्वा मलं स्वात्म-गुणं समृच्छति
तथा मनः सत्त्व-रजस्-तमो-मलं
ध्यानेन संत्यज्य समेति तत्त्वम्

५ निरंतराभ्यास-वशात् तदित्थं, पक्वं मनो ब्रह्मणि लीयते यदा
तदा समाधिः स विकल्प-वर्जितः, स्वतो ऽद्वयानंद-रसानुभावकः

६ समाधिना ऽनेन समस्त-वासना-ग्रंथेर् विनाशो ऽखिलकर्म-नाशः
अंतर्-बहिः सर्वत एव सर्वदा, स्वरूप-विस्फूर्ति रयत्नतः स्यात्

७ श्रुतेः शतगुणं विद्यात् मननं मननादपि
निदिध्यासं लक्षगुणं अनंतं निर्विकल्पकम्

८ निर्विकल्पक-समाधिना स्फुटं, ब्रह्मतत्त्व मवगम्यते ध्रुवम्
नान्यथा चलतया मनोगतेः, प्रत्ययांतर-विमिश्रितं भवेत्

९ अतः समाधत्स्व यतेन्द्रियः सदा, निरंतरं शांत-मनाः प्रतीचि
विध्वंसय ध्वांत मना द्यविद्यया, कृतं सदेकत्व-विलोकनेन

१० योगस्य प्रथमं द्वारं वाङ्-निरोधो ऽपरिग्रहः
निराशा च निरीहा च नित्यं एकांत-शीलता

११ एकांत-स्थिति रिंद्रियोपरमणे हेतुर् दमश् चेतसः
संरोधे करणं शमेन विलयं यायात् अहं-वासना
तेना नंदरसानुभूति रचला ब्राह्मी सदा योगिनस्
तस्मात् चित्त-निरोध एव सततं कार्यः प्रयत्नात् मुनेः

१२ वाचं नियच्छा त्मनि तं नियच्छ
बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धि-साक्षिणि
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे
विलाप्य शांतिं परमां भजस्व

: १२ : वैराग्य-बोधौ मुक्ति-हेतू

१ अंतस्त्यागो बहिस्त्यागो विरक्तस्यैव युज्यते
त्यज त्यंतर्बहिःसंगं विरक्तस् तु मुमुक्षया।

२ वैराग्य-बोधौ पुरुषस्य पक्षिवत्, पक्षौ विजानीहि विचक्षण त्वम्
विमुक्ति-सौधाग्र-तलाधिरोहणं,ताभ्यां विना नान्यतरेण सिध्यति

३ अत्यंत-वैराग्यवतः समाधिः, समाहितस्यैव दृढ-प्रबोधः
प्रबुद्ध-तत्त्वस्य हि बंध-मुक्तिर्, मुक्तात्मनो नित्यसुखानुभूतिः

४ आशां छिंधि विषोपमेषु विषये ष्वेषैव मृत्योः सृतिस्
त्यक्त्वा जाति-कुलाश्रमे ष्वभिमतिं मुंचा तिदूरात् क्रियाः
देहादौ असति त्यजा त्म-धिषणां प्रज्ञां कुरुष्वा त्मनि
त्वं द्रष्टा स्य मलो ऽसि निर्द्वय-परं ब्रह्मासि यद् वस्तुतः

५ लक्ष्ये ब्रह्मणि मानसं दृढतरं संस्थाप्य बाह्येंद्रियं
स्वस्थाने विनिवेश्य निश्चल-तनुश् चोपेक्ष्य देह-स्थितिम्
ब्रह्मात्मैक्य मुपेत्य तन्मयतया चाखंडवृत्त्या निशं
ब्रह्मानंदरसं पिबा त्मनि मुदा शून्यैः किमन्यैर् भ्रमैः

६ विशुद्ध मंतःकरणं स्वरूपे, निवेश्य साक्षिण्य वबोधमात्रे
शनैः शनैर् निश्चलतां उपानयन्, पूर्णं स्वमेवा नुविलोकयेत् ततः

७ देहेंद्रिय-प्राणमनो-ऽहमादिभिः
स्वाज्ञान-क्लृप्तैर् अखिलैर् उपाधिभिः
विमुक्त-मात्मान-मखंडरूपं
पूर्णं महाकाशमिवा-वलोकयेत्

८ ब्रह्मादि-स्तंब-पर्यंता मृषामात्रा उपाधयः
ततः पूर्णं स्व-मात्मानं पश्येत् एकात्मना स्थितम्

९ स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयं इंद्रः स्वयं शिवः
स्वयं विश्वं इदं सर्वं स्वस्मात् अन्यत् न किंचन

१० अंतः स्वयं चापि बहिः स्वयं च, स्वयं पुरस्तात् स्वयमेव पश्चात्
स्वयं अवाच्यां स्वयम-प्युदीच्यां,तथो-परिष्टात् स्वयमप्य-धस्तात्

११ सदेवेदं सर्वं जग-द्वगतं वाङ्मनसयोः
सतो ऽन्यत् नास्त्येव प्रकृति-पर-सीम्नि स्थितवतः
पृथक् किं मृत्स्नायाः कलश-घट-कुंभा-द्यवगतं
वदत्येष भ्रांतस् त्वमहमिति माया-मदिरया

१२ आकाशवत् निर्‌मल-निर्‌विकल्प-
निःसीम-निष्पंदन-निर्‌विकारम्
अतंर्‌बहिःशून्य-मनन्य-मद्वयं
स्वयं परं ब्रह्म किमस्ति बोध्यम्

१३ वक्तव्यं किमु विद्यते ऽत्र बहुधा ब्रह्मैव जीवः स्वयं
ब्रह्मैतत् जग-दाततं नु सकलं ब्रह्मा-द्वितीयं श्रुतेः
ब्रह्मैवाहमिति प्रबुद्ध-मतयः संत्यक्त-बाह्याः स्फुटं
ब्रह्मीभूय वसंति संतत-चिदानंदात्मनैव ध्रुवम्

१४ शवाकारं यावत् भजति मनुजस् ताव-दशुचिः
परेभ्यः स्यात् क्लेशो जनन-मरण-व्याधि-निलयः
यदा-त्मानं शुद्धं कलयति शिवाकार-मचलं
तदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि

१५ समाहितायां सति चित्तवृत्तौ, परात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे
न दृश्यते कश्चिदयं विकल्पः, प्रजल्पमात्रः परिशिष्यते ततः

१६ असत्कल्पो विकल्पो ऽयं विश्वमि-त्येकवस्तुनि
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः

१७ द्रष्टृ-दर्शन-दृश्यादि-भाव-शून्यैकवस्तुनि
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः

१८ कल्पार्णव इवात्यंत-परिपूर्णैकवस्तुनि
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः

१९ चित्तमूलो विकल्पो ऽयं चित्ताभावे न कश्चन
अतश् चित्तं समाधेहि प्रत्यग्रूपे परात्मनि

:१३: वैराग्य-बोध-परिणामः

१ किमपि सतत-बोधं केवलानंदरूपं
निरुपम-मतिवेलं नित्यमुक्तं निरीहम्
निरवधि गगनाभं निष्कलं निर्विकल्पं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ।

२ प्रकृति-विकृति-शून्यं भावनातीत-भावं
समरस-मसमानं मान-संबंध-दूरम्
निगमवचन-सिद्धं नित्य-मस्मत्-प्रसिद्धं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ।

३ अजर-ममर-मस्ताभास-वस्तुस्वरूपं
स्तिमित-सलिलराशि-प्रख्य-माख्या-विहीनम्
शमित-गुणविकारं शाश्वतं शांत-मेकं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ

४ छायेव पुंसः परिदृश्यमानं, आभासरूपेण फलानुभूत्या
शरीर-मारात् शववत् निरस्तं, पुनर् न संधत्त इदं महात्मा

५ समूल-मेतत् परिदह्य वह्नौ, सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे
ततः स्वयं नित्य-विशुद्ध-बोधानंदात्मना तिष्ठति विद्-वरिष्ठः

६ प्रारब्धसूत्र-ग्रथितं शरीरं, प्रयातु वा तिष्ठतु गोरिव स्रक्
न तत् पुनः पश्यति तत्त्ववेत्ता ऽऽनंदात्मनि ब्रह्मणि लीन-वृत्तिः

७ अखंडानंद-मात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः
किं इच्छन् कस्य वा हेतोर् देहं पुष्णाति तत्त्ववित्

८ संसिद्धस्य फलं त्वेतत् जीवन्मुक्तस्य योगिनः
बहिरंतः सदानंद-रसास्वादन-मात्मनि

९ वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्यो-परतिः फलम्
स्वानंदानुभवात् शांतिः, एषैवो-परतेः फलम्

१० यद्यु-त्तरोत्तराभावः पूर्वपूर्वं तु निष्फलम्
निवृत्तिः परमा तृप्तिर् आनंदो ऽनुपमः स्वतः

११ वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य परो ऽवधिः
अहंभावोदयाभावो बोधस्य परमो ऽवधिः
लीनवृत्ते-रनुत्पत्तिर् मर्यादो-परतेस् तु सा

IV स्थित-प्रज्ञः

:१४: स्थित-प्रज्ञता

१ ब्रह्माकारतया सदा स्थिततया निर्मुक्त-बाह्यार्थ-धीः
अन्यावेदित-भोग्यभाग-कलनो निद्रालुवत् बालवत्
स्वप्नालोकित-लोकवत् जगदिदं पश्यन् क्वचित् लब्ध-धीः
आस्ते कश्चि-दनंतपुण्य-फलभुग् धन्यः स मान्यो भुवि

२ स्थित-प्रज्ञो यति-रयं यः सदानंद-मश्नुते
ब्रह्मण्येव विलीनात्मा निर्विकारो विनिष्क्रियः

३ ब्रह्मात्मनोः शोधितयोर् एकभावावगाहिनी
निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते
सा सर्वदा भवेत् यस्य स्थित-प्रज्ञः स उच्यते

४ यस्य स्थिता भवेत् प्रज्ञा यस्यानंदो निरंतरः
प्रपंचो विस्मृत-प्रायः स जीवन्मुक्त इष्यते

५ लीनधी-रपि जागर्ति यो जाग्रद्धर्म-वर्जितः
बोधो निर्वासनो यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते

६ शांत-संसारकलनः कलावानपि निष्कलः
यस्य चित्तं विनिश्चिंतं स जीवन्मुक्त इष्यते

७ अतीताननुसंधानं भविष्यदविचारणम्
औदासीन्यमपि प्राप्ते जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्

८ गुणदोष-विशिष्टे ऽस्मिन् स्वभावेन विलक्षणे
सर्वत्र समदर्शित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्

९ इष्टानिष्टार्थ-संप्राप्तौ समदर्शितया ऽऽत्मनि
उभयत्राविकारित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्

१० देहेंद्रियादौ कर्तव्ये ममाहंभाव-वर्जितः
औदासीन्येन यस् तिष्ठेत् स जीवन्मुक्त-लक्षणः

११ न प्रत्यग्-ब्रह्मणोर् भेदं कदापि ब्रह्म-सर्गयोः
प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्त-लक्षणः

१२ साधुभिः पूज्यमाने ऽस्मिन् पीड्यमाने ऽपि दुर्जनैः
समभावो भवेत् यस्य स जीवन्मुक्त-लक्षणः

१३ यत्र प्रविष्टा विषयाः परेरिता, नदी-प्रवाहा इव वारि-राशौ
लिनंति सन्मात्रतया न विक्रियां, उत्पादयन्त्येष यतिर् विमुक्तः

१४ विज्ञात-ब्रह्मतत्त्वस्य यथापूर्वं न संसृतिः
अस्ति चेत् न स विज्ञात-ब्रह्मभावो बहिर्मुखः

१५ अत्यंत-कामुकस्यापि वृत्तिः कुंठति मातरि
तथैव ब्रह्मणि ज्ञाते पूर्णानंदे मनीषिणः

:१५: प्रारब्धादेः कर्मणो न पारमार्थिकता

१ निदिध्यासन-शीलस्य बाह्य-प्रत्यय ईक्ष्यते
ब्रवीति श्रुति-रेतस्य प्रारब्धं फल-दर्शनात्

२ सुखाद्यनुभवो यावत् तावत् प्रारब्ध-मिष्यते
फलोदयः क्रियापूर्वो निष्क्रियो न हि कुत्रचित्

३ 'अहं ब्रह्मे' ति विज्ञानात् कल्प-कोटिशतार्जितम्
संचितं विलयं याति प्रबोधात् स्वप्न-कर्मवत्

४ स्वं असंगं उदासीनं परिज्ञाय नभो यथा
न श्लिष्यते यतिः किंचित् कदाचित् भावि-कर्मभिः

५ ज्ञानोदयात् पुरा-रब्धं कर्म ज्ञानात् न नश्यति
अदत्वा स्वफलं, लक्ष्यं उद्दिश्यो-त्सृष्ट-बाणवत्

६ व्याघ्र-बुध्या विनिर्मुक्तो बाणः पश्चात् तु गो-मतौ
न तिष्ठति, च्छिनत्त्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम्

७ प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः
सम्यग्ज्ञान-हुताशनेन विलयः प्राक्संचितागामिनाम्
ब्रह्मात्मैक्य-मवेक्ष्य तन्मयतया ये सर्वदा संस्थितास्
तेषां तत् त्रितयं नहि क्वचिदपि ब्रह्मैव ते निर्गुणम्

८ उपाधि-तादात्म्य-विहीन-केवल,-ब्रह्मात्मनैवा त्मनि तिष्ठतो मुनेः
प्रारब्ध-सद्भाव-कथा न युक्ता, स्वप्नार्थ-संबंध-कथेव जाग्रतः

९ नहि प्रबुद्धः प्रतिभास-देहे, देहोपयोगिन्यपि च प्रपंचे
करोत्य हंतां ममतां इदंतां, किंतु स्वयं तिष्ठति जागरेण

१० न तस्य मिथ्यार्थ-समर्थनेच्छा, न संग्रहस् तज्जगतो ऽपि दृष्टः
तत्रानुवृत्तिर् यदि चेत् मृषार्थे, न निद्रया मुक्त इतीष्यते ध्रुवम्

११ तद्वत् परे ब्रह्मणि वर्तमानः, सदात्मना तिष्ठति नान्य दीक्षते
स्मृतिर् यथा स्वप्न-विलोकितार्थे, तथा विदः प्राशन-मोचनादौ

१२ कर्मणा निर्मितो देहः प्रारब्धं तस्य कल्प्यताम्
न अनादेर् आत्मनो युक्तं नैवात्मा कर्म-निर्मितः

१३ प्रारब्धं सिध्यति तदा यदा देहात्मना स्थितिः
देहात्मभावो नैवेष्टः प्रारब्धं त्यज्यतां अतः

१४ ज्ञानेना ज्ञान-कार्यस्य समूलस्य लयो यदि
तिष्ठत्ययं कथं देह इति शंकावतो जडान्

१५ समाधातुं बाह्य-दृष्ट्या प्रारब्धं वदति श्रुतिः
न तु देहादि-सत्यत्व-बोधनाय विपश्चिताम्

१६ निरस्त-रागा विनिरस्त-भोगाः
शांताः सुदांता यतयो महांतः
विज्ञाय तत्त्वं पर-मेत-दंते
प्राप्ताः परां निर्वृति-मात्म-योगात्

१७ भवान् अपीदं परतत्त्व-मात्मनः
स्वरूप-मानंद-घनं विचार्य
विधूय मोहं स्वमनः-प्रकल्पितं
मुक्तः कृतार्थो भवतु प्रबुद्धः

१८ बंधो मोक्षश्च तृप्तिश्च चिंतारोग्य-क्षुधादयः
स्वेनैव वेद्या यज्ज्ञानं परेषां आनुमानिकम्

१९ तट-स्थिता बोधयन्ति गुरवः श्रुतयो यथा
प्रज्ञयैव तरेत् विद्वान् ईश्वरानुगृहीतया

२० वेदांत-सिद्धांत-निरुक्ति-रेषा, ब्रह्मैव जीवः सकलं जगत् च
अखंडरूप-स्थितिरेव मोक्षो, ब्रह्मा-द्वितीयं श्रुतयः प्रमाणम्

V ब्रह्म-निर्वाणम्

:१६: शिष्यस्य कृतार्थता-प्रकाशनम्

१ इति गुरु-वचनात् श्रुति-प्रमाणात्
पर-मवगम्य सतत्त्व-मात्म-युक्त्या
प्रशमित-करणः समाहितात्मा
क्वचिद-चलाकृति-रात्म-निष्ठितो ऽभूत्

२ कंचित् कालं समाधाय परे ब्रह्मणि मानसम्
उत्थाय परमानंदात् इदं वचन-मब्रवीत्

३ वाचा वक्तु-मशक्यमेव मनसा मंतुं न वा शक्यते
स्वानंदामृतपूर-पूरित-परब्रह्मांबुधेर् वैभवं
अंभोराशि-विशीर्ण-वार्षिकशिला-भावं भजत् मे मनो
यस्यांशांश-लवे विलीन-मधुना-नंदात्मना निर्वृतम्

४ क्व गतं केन वा नीतं कुत्र लीनं इदं जगत्
अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महदद्भुतम्

५ किं हेयं किं उपादेय किं अन्यत् किं विलक्षणम्
अखंडानंद-पीयूष-पूर्णे ब्रह्म-महार्णवे

६ न किंचित् अत्र पश्यामि न शृणोमि न वेद्म्यहम्
स्वात्मनैव सदानंदरूपेणा॑स्मि विलक्षणः

७ धन्यो ऽहं कृतकृत्यो ऽहं विमुक्तो ऽहं भव-ग्रहात्
नित्यानंदस्वरूपो ऽहं पूर्णो ऽहं तदनुग्रहात्

८ असंगो ऽहं अनंगो ऽहं अलिंगो ऽहं अभंगुरः
प्रशांतो ऽहं अनंतो ऽहं अमलो ऽहं चिरंतनः

९ द्रष्टुः श्रोतुर् वक्तुः, कर्तुर् भोक्तुर् विभिन्न एवाहम्
नित्य-निरंतर-निष्क्रिय,-निःसीमासंग-पूर्णबोधात्मा

१० सर्वेषु भूतेष्वहमेव संस्थितो, ज्ञानात्मना॑न्तर्बहि॑राश्रयः सन्
भोक्ता च भोग्यं स्वयमेव सर्वं, यद्यत् पृथग् दृष्ट॑मिदंतया पुरा

११ मय्य॑खंडसुखांभोधौ बहुधा विश्व-वीचयः
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते माया-मारुत-विभ्रमात्

१२ न मे देहेन संबंधो मेघेनेव विहायसः
अतः कुतो मे तद्धर्मा जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तयः

१३ उपाधि॑रायाति स एव गच्छति, स एव कर्माणि करोति भुंक्ते
स एव जीर्यन् म्रियते सदाहं, कुलाद्रिवत् निश्चल एव संस्थितः

१४ न मे प्रवृत्तिर् न च मे निवृत्तिः, सदैकरूपस्य निरंशकस्य
एकात्मको यो निबिडो निरंतरो, व्योमेव पूर्णः स कथं नु चेष्टते

१५ कर्तापि वा कारयितापि नाहं
भोक्तापि वा भोजयितापि नाहम्
द्रष्टापि वा दर्शयितापि नाहं
सो ऽहं स्वयंज्योति-रनीदृ-गात्मा

१६ जले वापि स्थले वापि लुठत्वेष जडात्मकः
नाहं विलिप्ये तद्धर्मैर् घट-धर्मैर् नभो यथा

१७ संतु विहाराः प्रकृतेर्, दशधा शतधा सहस्रधा वापि
किं मे ऽसंग-चितेस् तैर्, न घनः क्वचि-दंबरं स्पृशति

१८ सर्वाधारं सर्ववस्तु-प्रकाशं, सर्वाकारं सर्वगं सर्व-शून्यम्
नित्यं शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं, ब्रह्मा-द्वैतं यत् तदेवाह-मस्मि

१९ स्वाराज्य-साम्राज्य-विभूति-रेषा
भवत्कृपा-श्रीमहिम-प्रसादात्
प्राप्ता मया श्रीगुरवे महात्मने
नमो नमस् ते ऽस्तु पुनर् नमो ऽस्तु

२० नमस् तस्मै सदेकस्मै कस्मैचित् महसे नमः
यत् एतत् विश्वरूपेण राजते गुरुराजते

: ११ : आत्मारामः सन् कालं नय

अनुक्रम २८५१ दि: ... २.१.३

: १७ : आत्मारामः सन् कालं नय

१ इति नत-मवलोक्य शिष्यवर्यं, समाधिगतात्मसुखं प्रबुद्ध-तत्त्वम्
प्रमुदित-हृदयः स देशिकेन्द्रः, पुन-रिद-माह वचः परं महात्मा

२ ब्रह्म-प्रत्यय-संततिर् जग-दतो ब्रह्मैव सत् सर्वतः
पश्या-ध्यात्म-दृशा प्रशांत-मनसा सर्वा-स्ववस्था-स्वपि
रूपात् अन्य-दवेक्षितं कि-मभितश् चक्षुष्मतां दृश्यते
तद्वत् ब्रह्मविदः सतः कि-मपरं बुद्धेर् विहारास्पदम्

३ कस् तां परानंद-रसानुभूतिं, उत्सृज्य शून्येषु रमेत विद्वान्
चंद्रे महाह्लादिनि दीप्यमाने, चित्रेंदु-मालोकयितुं क इच्छेत्

४ असत्पदार्थानुभवे न किंचित्, न ह्यस्ति तृप्तिर् न च दुःख-हानिः
तत् अद्वयानंद-रसानुभूत्या, तृप्तः सुखं तिष्ठ सदात्म-निष्ठया

५ स्वमेव सर्वथा पश्यन् मन्यमानः स्व-मद्वयम्
स्वानंदं अनुभुंजानः कालं नय महामते

६ अखंड-बोधात्मनि निर् विकल्पे, विकल्पनं व्योम्नि पुरः प्रकल्पनम्
तत् अद्वयानंदमयात्मना सदा, शांतिं परां एत्य भजस्व मौनम्

७ नास्ति निर् वासनात् मौनात् परं सुखकृ-दुत्तमम्
विज्ञातात्मस्वरूपस्य स्वानंदरस-पायिनः

८ गच्छन् तिष्ठन् उपविशन् शयानो वाऽन्यथापि वा
यथेच्छं च वसेत् विद्वान् आत्मारामः सदा मुनिः

९ न देश-कालासन-दिग्यमादि-लक्ष्याद्यपेक्षा प्रतिबद्ध-वृत्तेः
संसिद्ध-तत्त्वस्य महात्मनोऽस्ति, स्व-वेदने का नियमाद्यपेक्षा

१० अयं आत्मा नित्यसिद्धः प्रमाणे सति भासते
न देशं नापि वा कालं न शुद्धिं वाऽप्यपेक्षते

११ एष स्वयंज्योतिरनंत-शक्तिः, आत्माऽप्रमेयः सकलानुभूतिः
यमेव विज्ञाय विमुक्त-बंधो, जयत्ययं ब्रह्मविदुत्तमोत्तमः

१२ न खिद्यते नो विषयैः प्रमोदते, न सज्यते नापि विरज्यते च
स्वस्मिन् सदा क्रीडति नंदति स्वयं, निरंतरानंद-रसेन तृप्तः

१३ क्षुधां देह-व्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनि
तथैव विद्वान् रमते निर्ममो निरहं सुखी

१४ चिंताशून्यमदैन्य-भैक्षमशनं पानं सरिद्-वारिषु
स्वातंत्र्येण निरंकुशा स्थितिरभीर् निद्रा श्मशाने वने
वस्त्रं क्षालनशोषणादि-रहितं दिग् वास्तु शय्या मही
संचारो निगमांतवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि

१५ विमान-मालंब्य शरीर-मेतद्
भुन-क्त्यशेषान् विषयान् उपास्थितान्
परेच्छया बालव-दात्म-वेत्ता
यो ऽव्यक्त-लिंगो ऽननुषक्त-बाह्यः

१६ दिगंबरो वापि च सांबरो वा, त्वगंबरो वापि चिदंबरस्थः
उन्मत्तवद् वापि च बालवद् वा, पिशाचवद् वापि चर-त्यवन्याम्

१७ कामान् निष्कामरूपी सन् चर-त्येक-चरो मुनिः
स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वात्मना स्थितः

१८ क्वचिद् मूढो विद्वान् क्वचिदपि महाराज-विभवः
क्वचिद् भ्रांतः सौम्यः क्वचि-दजगराचार-कलितः
क्वचित् पात्रीभूतः क्वचि-दवमतः क्वा-प्यविदितश्
चरत्येवं प्राज्ञः सतत-परमानंद-सुखितः

१९ अशरीरं सदा संतं इमं ब्रह्मविदं क्वचित्
प्रियाप्रिये न स्पृशतश् तथैव च शुभाशुभे

२० स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नत-स्थलम्
दैवेन नीयते देहो यथाकालोपभुक्तिषु

२१ प्रारब्धकर्म-परिकल्पित-वासनाभिः
संसारिवत् चरति भुक्तिषु मुक्त-देहः
सिद्धः स्वयं वसति साक्षिव-दत्र तूष्णीं
चक्रस्य मूलमिव कल्पविकल्प-शून्यः

:१८: ब्रह्म-विहारः

१ जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः
उपाधि-नाशात् ब्रह्मैव सद्ब्रह्मा-प्येति निर्द्वयम्

२ शैलूषो वेष-सद्भावाभावयोश्च यथा पुमान्
तथैव ब्रह्मवित् श्रेष्ठः सदा ब्रह्मैव नापरः

३ यत्र क्वापि विशीर्णं, सत्पर्णमिव तरोर् वपुः पतनात्
ब्रह्मीभूतस्य यतेः, प्रागेव हि तत् चिदग्निना दग्धम्

४ कुल्यायां अथ नद्यां वा शिव-क्षेत्रे ऽपि चत्वरे
पर्णं पतति चेत् तेन तरोः किं नु शुभाशुभम्

५ क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले
संयुक्तं एकतां याति तथा-त्मन्या-त्मवित् मुनिः

६ एवं विदेह-कैवल्यं सन्मात्रत्वं अखंडितम्
ब्रह्मभावं प्रपद्यैष यतिर् नावर्तते पुनः

७ इति श्रुत्वा गुरोर् वाक्यं प्रश्रयेण कृतानतिः
स तेन समनुज्ञातो ययौ निर्मुक्त-बंधनः

८ गुरुर् एवं सदानंद-सिंधौ निर्मग्न-मानसः
पावयन् वसुधां सर्वां विचचार निरंतरम्

९ इत्याचार्यस्य शिष्यस्य संवादेना¯त्म-लक्षणम्
निरूपितं मुमुक्षूणां सुख-बोधोपपत्तये

१० हित¯मिम¯मुपदेश¯माद्रियंतां
विहित-निरस्त-समस्त-चित्त-दोषाः
भवसुख-विरताः प्रशांत-चित्ताः
श्रुति-रसिका यतयो मुमुक्षवो ये

११ संसाराध्वनि तापभानु-किरणप्रोद्भूत-दाहव्यथा-
खिन्नानां जल-कांक्षया मरु-भुवि श्रांत्या परिभ्राम्यताम्
अत्यासन्न-सुधांबुधिं सुखकरं ब्रह्मा¯द्वयं दर्शयन्त्येषा
शंकर-भारती विजयते निर्वाण-संदायिनी

समाप्त

मराठी ग्रंथ संग्रहालय, ठाणे. स्थळप्रत.
अनुक्रम ....
क्रमांक ....
REFBK-0009397